मृदुला गर्ग कृत 'अनित्य' (उपन्यास) : इतिहास और आख्यान का सम्बन्ध

(एम.फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध निर्देशक

प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय

शोधकर्त्री

ज्योति सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - 110067

2000

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Centre of Indian Languages

Dated : 07/07/2000

DECLARATION

I declare that the material in this dissertation entitled *"MRIDULA GARG KRIT 'ANITYA' (UPANYAS) : ITIHAS AUR AKHYAN KA SAMBANDH"* submitted by me is original research work and has not been previously submitted for any other degree of this or any other university/institution.

(Jyoti Singh)
Name of the Scholar

(Prof. Manager Pandey)
Supervisor
CIL/SLL & CS/JNU

(Prof. Nasser Ahmad Khan)
Chairperson
CIL/SLL & CS/JNU

आपसे . . .

और जब मैं इस शोध प्रबन्ध को आपके समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ, कुछ कहे बगैर ही चले जाना अधूरा सा लग रहा है। मेरा मानना है कि हर दिन एक जीवन होता है। सुबह आँख खुलने से लेकर रात की चाँदनी की अठखेलियाँ देखते हुए आँख मूंदने के बीच बहुत कुछ घटता है। यह घट जाना ही जीवन है और उसे देखकर भलीभाँति समझ लेना... एक बहुत बड़ा अनुभव। ऐसे ही अनुभव–क्रम से गुजरते हुए मेरा आगमन जे॰एन॰यू॰ परिसर में हुआ।

मैं यहाँ एम॰फिल॰ में नई–नई आई थी, कुछ कर गुजरने की तमन्ना लिए, नए माहौल से थोड़ा सा डरी हुई। शिक्षकों के आशीर्वाद और सहपाठियों के सहयोग से धीरे–धीरे सब कुछ ठीक होता गया। पर शोध–प्रबन्ध का विषय–चयन समस्या के रूप में सामने आया। कुछ अलग करने की इच्छा ने विषय–चयन में उलझा दिया। मैं तय ही नहीं कर पा रही थी कि किस पर शोध करूँ, किस पर नहीं, किन्तु मेरे शोध–निर्देशक आदरणीय मैनेजर पाण्डेय ने मेरी दुविधा को दूर करने में बड़ा सहयोग दिया। अंततः काफी विचार–विमर्श के उपरान्त मृदुला गर्ग पर शोध–कार्य करना निश्चित हुआ।

मृदुला जी ने अब तक छह उपन्यासों की रचना की है जिनमें से पाँच का केन्द्रीय विषय नारी अस्मिता अथवा व्यक्ति स्वातन्त्र्य की खोज है। 'अनित्य' का थीम इन सभी उपन्यासों से अलग है। ऐतिहासिक घटनाओं तथा राजनीतिक उथल–पुथल के मिले–जुले रूप, इस उपन्यास ने मुझे बहुत प्रभावित किया अतः मैंने इसी उपन्यास को अपने शोध का विषय बनाया।

'अनित्य' स्वतंत्रता आंदोलन के दौर और उसके पश्चात् सन् 1950–55 के आसपास की कथा पर आधारित है, जिसका उद्देश्य इस बात की पड़ताल करना था कि समझौतावादी नीतियों का व्यक्ति–मानस और स्वतंत्र भारत पर क्या प्रभाव पड़ा, क्या हम वाकई स्वतंत्र हो पाए? भगतसिंह और गाँधी के विचार–दर्शन को समानान्तर लेता हुआ और पात्रों द्वारा उनका विश्लेषण करता हुआ यह उपन्यास आज के दौर में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना आज से बीस वर्ष पहले था, जब 'अनित्य' प्रथम बार सन् 1980 में प्रकाशित हुआ था।

शोध–कार्य के दौरान कई बार मुझे इस प्रश्न का सामना करना पड़ा कि महिला लेखक पर काम कर रही हो या पुरुष लेखक पर, किसी लेखिका को ही क्यों चुना, महिला लेखन को विषय क्यों नहीं बनाया आदि–आदि। मेरी समझ में तो लेखन–लेखन ही होता है, नर या मादा अथवा स्त्री या पुरुष नहीं। यह बात और है कि रचनाकार का व्यक्तित्व और जीवन–दृष्टि कृति में कहीं न कहीं अवश्य दिखाई दे जाती है। अतः 'अनित्य' मेरी दृष्टि में किसी महिला लेखिका द्वारा रचा गया उपन्यास मात्र नहीं था। किन्तु इतना अवश्य है कि महिला लेखन पर घर का लेखन होने का जो आक्षेप लगता रहा है, यह उपन्यास उसका जवाब देता है। एक सजग नागरिक और दायित्वबोध वाली लेखिका दोनों ही स्तरों पर मृदुला जी की भूमिका प्रशंसनीय है।

उपन्यास के दोनों ही खण्ड – दुविधा और प्रतिबोध अर्थपूर्ण हैं। अविजित की समझौतावादी नीति तथा काजल का असंतोष, अनित्य का मोहभंग तथा प्रभा का आक्रोश, ये सब ही आज के दौर का सही–सही चित्र प्रस्तुत करते हैं। इतिहास की विद्यार्थी होने के नाते मैं इस उपन्यास से इतना अधिक जुड़ गई थी कि इसके

पात्र और घटनायें मेरी आँखों के आगे घटती रही थीं और मैं तटस्थ होकर उनका लगभग सही–सही विश्लेषण कर पा रही थी। शोधार्थी के लिए भी तो यही गुण महत्त्वपूर्ण हैं।

इस लघु शोध–प्रबन्ध का विभाजन चार अध्यायों में किया गया है। पहला अध्याय है – 'इतिहास और आख्यान का सम्बन्ध'। इसमें आख्यान और इतिहास के विषय में सामान्य समझ का परिचय देते हुए आख्यान के एक रूप उपन्यास के विशेष सन्दर्भ में दोनों के अन्तर्सम्बन्ध पर विचार किया गया है।

दूसरा अध्याय 'मृदुला गर्ग का उपन्यास साहित्य' मृदुला जी के जीवन और लेखन–कर्म पर प्रकाश डालता है। इसमें उनकी सभी रचनाओं का उल्लेख करते हुए केवल उपन्यासों पर विस्तार से विचार किया गया है। इस अध्याय द्वारा उनकी सम्पूर्ण कृतियों से परिचय प्राप्त होता है और लेखन की विशिष्टता से भी पहचान होती है।

तीसरे अध्याय 'अनित्य में इतिहास' के अन्तर्गत उपन्यास में इतिहास के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है। 'अनित्य' में आजादी के पचास साल बाद के ह्रासोन्मुख समाज की पड़ताल की गई है। अवसरवादी मानसिकता और समझौतावादी नीतियों के फलस्वरूप मिली आधी–अधूरी स्वतन्त्रता से उपजा मोहभंग, इन्हीं सारे प्रश्नों और परिस्थितियों से हम 'अनित्य' में रू–ब–रू होते हैं। इस अध्याय में इसी से सम्बन्धित बातों पर विमर्श किया गया है।

चौथे अध्याय 'इतिहास के आख्यानीकरण की कला' में 'अनित्य' को दृष्टि में रखते हुए इतिहास और उपन्यास की भाषा के अन्तर्सम्बन्ध पर विचार किया गया है। इतिहास की तथ्यपरकता का समावेश होते हुए भी 'अनित्य' संवेदनात्मकता से

अछूता नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त 'अनित्य' की भाषा और शिल्प पर इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है। परम्परा से थोड़ा हटकर उपन्यास 'अनित्य' के कलेवर को जानने–समझने में इस अध्याय से सहायता मिलेगी।

शुरू–शुरू में जब मैं विषय से सम्बन्धित सामग्री का संकलन कर रही थी तो कितना सोचा था कि शोध–प्रबन्ध का रूप ऐसा होगा, वैसा होगा; किन्तु जैसे–जैसे इसे मूर्त्त रूप देती गई अथवा शब्द पृष्ठ पर अंकित होते गए, यह थोड़े से भिन्न रूप में सामने आया। कठिन परिश्रम के बावजूद शायद कुछ चीजें छूट भी गई होंगी जिन्हें इसमें स्थान देना चाहिए था। उन सारी न्यूनताओं के लिए मैं क्षमा चाहती हूँ और विश्वास दिलाती हूँ कि आगे के शोध–कार्यों में इन्हें दूर करने का यथासम्भव प्रयत्न करूँगी।

यह लघु शोध–प्रबन्ध केवल मेरे ही श्रम का फल नहीं है। इसके पूरा होने में बहुत से लोगों का योगदान रहा है। सर्वप्रथम मैं मृदुला जी की हृदय से आभारी हूँ जिनके सहयोग के बिना यह कार्य आरम्भ ही नहीं हो सकता था। शोध–विषयक सामग्री जुटाने में उन्होंने विशेष सहयोग दिया। अपनी अतिव्यस्तता के बावजूद उन्होंने समय निकाला और बातचीत कर प्रश्नों का समाधान खोजने में मदद की।

इतने बड़े परिसर में केवल कमाल ही ऐसा मित्र है जो आवश्यकता पड़ने पर सदा उपस्थित रहा। मित्र होते हुए भी वह संरक्षक की भूमिका अदा करता रहा है। इस कार्य के दौरान जब ज्यादा उलझ जाती थी तो वह चुटकियों में सारे उलझे तार सुलझा देता था और तो और सुस्त हो जाने पर नसीहत देने व डाँटने में भी कभी नहीं चूका। उसके स्नेह को मैं जीवन भर नहीं भूल सकती। उसके

प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने में शब्द भी स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि आदरणीय गुरुवर पाण्डेय जी के निर्देशन में ही सारा कार्य भली–भाँति सम्पन्न हो सका। उनके क्रोध से कई बार डरी भी हूँ और सहमी भी, किन्तु उस क्रोध के पीछे छिपी शुभेच्छा को महसूसने के पश्चात् मन ही मन उनका आदर करती रही हूँ।

अपने केन्द्र के शिक्षकों डॉ॰ पुरुषोत्तम अग्रवाल, डॉ॰ गोबिन्द प्रसाद, ओ॰पी॰ सिंह जी, ज्योतिसर शर्मा मैडम के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनके सम्पर्क और विचार–विमर्श के जरिये सदा ही नया सीखती रही। ज्ञानार्जन को जीवन का लक्ष्य बनाने की प्रेरणा भी इन्हीं शिक्षकों से मिलती रही।

मेरे वरिष्ठ प्रमोद कुमार सिंह जी को उनके विशेष सहयोग के लिए धन्यवाद तथा मेरे सहपाठी योगेन्द्र एवं स्नेही छात्रों नीरज, बालेन्द्र, सुधीर, प्रिय सखी सविता आदि सभी को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देना चाहूँगी।

अन्ततः मलिक साहब को विशेष रूप से धन्यवाद जिन्होंने पुस्तकालय में पुस्तकें खोजने में सदा सहायता की।

टंकण की अपनी कुछ सीमायें होती हैं, अतः त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

Jyoti Singh

(ज्योति सिंह)

विषयानुक्रमणिका

	आपसे . . .	(i)-(v)
अध्याय–1	इतिहास और आख्यान का सम्बन्ध	1-19
अध्याय–2	मृदुला गर्ग का उपन्यास साहित्य	20-41
अध्याय–3	अनित्य में इतिहास	42-77
अध्याय–4	इतिहास के आख्यानीकरण की कला	78-109
	और अंत में . . .	110-114
	सहायक ग्रन्थ सूची	115-118

अध्याय-1

इतिहास और आख्यान का सम्बन्ध

अध्याय–1

इतिहास और आख्यान का सम्बन्ध

आख्यान का शाब्दिक अर्थ है – वर्णन। अंग्रेजी में इसके लिए नारेशन (Narration) शब्द का प्रयोग किया जाता है। समान्तर कोश में आख्यान के लिए दास्तान, वृतान्त, कथा, कहानी, किस्सा आदि पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। तो क्या आख्यान का अर्थ कथा कहना भर है? आख्यान और कथा दो भिन्न रूप हैं। एक का आधार यथार्थ है तो दूसरा नियमों से स्वतन्त्र है, जिसमें कथा कहने के नाम पर 'कोरी गप्प' भी कही जा सकती है और कठोर सच्चाई भी। राजा–रानी, जादूगर–परी से लेकर देवी–देवता और साधारण मनुष्य तक उसकी विषयवस्तु के अन्तर्गत आ सकते हैं। अलका सरावगी ने अपने उपन्यास में एक स्थान पर लिखा है – "इस धरती पर कहानियाँ अनंत हैं क्योंकि हर आदमी के अन्दर उसकी दुनिया की बिल्कुल अपनी एक कहानी है।

कहना शायद यों चाहिए कि हर आदमी के अन्दर उसकी दुनियाओं की अपनी कहानियाँ हैं और ये दुनियाएँ भी अनन्त हैं। और तो और इस अनंतता में दुनिया की सब निर्जीव चीजों और पशु–पक्षी, पेड़ों, सड़कों की भी तो कहानियाँ हैं।"[1]

यहाँ कहानी शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जिसमें जीवन के स्थूल पक्ष से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष तक इसके अन्तर्गत आ सकते हैं। विषय की विविधता और कहने की स्वतन्त्र–शैली कथा की विशेषता है। लेकिन आख्यान इससे भिन्न है। वह कोरी वर्णनात्मकता नहीं है, यथार्थपरकता इसकी पहली शर्त होती है। आख्यानकार कल्पना तत्त्व की सहायता से परी–कथाओं की सृष्टि नहीं करता अपितु अपनी पूरी संवेदनशक्ति के साथ वह जीवन के यथार्थ को पाठकों के सम्मुख

प्रस्तुत करता है। इस प्रस्तुति में उसकी जीवन–दृष्टि अथवा दृष्टिकोण भी जुड़ जाता है। मृदुला गर्ग की राय में "साहित्य यथार्थ की अनुकृति भर नहीं होता। साहित्यकार चिन्तन व अनुभूति से उत्पन्न अपनी जीवन–दृष्टि से परख कर यथार्थ का पुनर्सृजन करता है।"[2] अतः यथार्थ का पुनर्सृजन ही साहित्य है। यथार्थ के साथ–साथ लेखक, पात्र, उपन्यास, सभी एक जीवनधारा के साथ–साथ जीवन–दृष्टि भी प्रदान करते हैं। वस्तुतः आख्यान जीवन–संघर्ष की कथा को कहता है, यह कथा आख्यानकार द्वारा सृजित पात्रों और घटनाओं द्वारा कही जाती है। इस तरह रचना जीवन–यात्रा की तरह होती है जिसको तय करते हुए लेखक के दृष्टिकोण का समावेश स्वतः ही हो जाता है। 'राम की शक्ति–पूजा' तथा 'अँधेरे में' इसी तरह हमारे समक्ष जीवन का आख्यान प्रस्तुत करती हैं।

आख्यान के कई रूप हैं, जिसका एक रूप उपन्यास से समझा जाता है। अपने इस शोध प्रबन्ध में मैं आख्यान तथा इतिहास के सम्बन्ध पर विचार करूँगी जिसमें आख्यान के अन्तर्गत उपन्यास की विवेचना पर अधिक बल रहेगा। यह साहित्य तथा इतिहास की प्रवृत्तियों तथा उनके पारस्परिक सहयोग को समझने में सहायक होगा।

साहित्य तथा इतिहास में मूलभूत अंतर कल्पना तथा तथ्य' का समझा जाता है। साहित्य के बारे में सामान्य समझ यह है कि वह काल्पनिक सृष्टि है तथा इतिहास तथ्यों का लेखा–जोखा।

डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय के अनुसार – "साहित्य रचना का समूचा व्यवहार कल्पना का क्रिया–व्यापार है। जीवन जगत के बोध, यथार्थ की चेतना, चरित्रों के निर्माण, भावों, विचारों की व्यंजना के तरीकों की खोज और रूपशिल्प आदि के

आविष्कार से लेकर भाषा की भंगिमाओं का विकास तक सब कुछ कल्पना की मदद से ही होता है।"[3]

साहित्य तथा इतिहास इन दोनों रूपों को और नजदीक से जाना जाए तो कुछ और भी वास्तविकताएँ हमारे सामने आती हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि साहित्यकार की कल्पना जीवन की वास्तविकता को प्रस्तुत करती है। वह तथ्यात्मक भले ही न हो पर सत्य से बहुत दूर भी नहीं होती। साहित्यकार जीवन के सत्य को दर्पण की भाँति ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं कर देता है बल्कि वह अपनी कल्पना–शक्ति द्वारा नवीन घटना और पात्रों की सृष्टि करता है। वह कठपुतली की भाँति उन्हें नचाता हो ऐसा भी नहीं है। लेखन एक ऐसी चीज है जिसमें सृजन के बहाने लेखक परकाया प्रवेश करता है। उसका हर पात्र और परिस्थिति जीवंत हो उठती है। रचनाकार उन सबके साथ–साथ एक भरी–पूरी जीवन–यात्रा तय कर लेता है। इस जीवन–यात्रा में लेखक की कर्मरतता, तलाश और जीवन–दृष्टि सभी समाविष्ट रहते हैं। इन सभी विशिष्टताओं को समाहित करके उपन्यासकार जीवन का आख्यान हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जहाँ इतिहासकार तथ्यों का संकलन करता है वहीं साहित्यकार नया इतिहास रचने का कार्य करता है। उपन्यास के विषय में विमर्श करते हुए प्रसिद्ध उपन्यासकार अब्दुल बिसमिल्लाह ने कहा है कि – "कभी–कभी यह भी लगता है कि उपन्यास लिखने का अर्थ है इतिहास लिखना। जो इतिहासकारों ने लिखे हैं, उनमें मूलतः राजाओं, महाराजाओं, शहंशाहों, नवाबों के पराक्रम हैं। जीवन भी उन्हीं का है, प्रजा अर्थात् जनता का जीवन यदि है भी तो उन्हीं के संदर्भ से उसे जोड़कर देखा गया है। फिर सामान्य आदमी का इतिहास कहाँ है? वह साहित्य में है।"[4]

इस मत से साहित्य की व्यापकता पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार साहित्य आम आदमी का इतिहास है। इतिहास के तथ्य किसी घटना की प्रामाणिकता के लिए जितने महत्त्वपूर्ण होते हैं साहित्य में चित्रित जन–जीवन भी किसी सत्य की पुष्टि में उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है। बाणभट्ट का 'हर्षचरित' इसका प्रमाण है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में उस युग के ग्रामों तथा कृषक जीवन का सच्चा चित्र देखने को मिलता है। इसी को इंगित करते हुए लेखिका अलका सरावगी ने अपने उपन्यास में लिखा है – "इतिहास मामूली आदमियों की कथा नहीं कहता, पर हर इतिहास मामूली आदमियों से पटा पड़ा होता है जो उस इतिहास से जूझते हुए जीवन काटते हैं। इसलिए किशोर बाबू इतिहास के अनकहे को कहकर अपनी कथा के लिए इतिहास के स्तर तक उठ जाने की आकांक्षा पाले हुए हैं।"[5] उनके उपन्यास के पात्र किशोर बाबू ऐतिहासिक भले ही न हों परन्तु एक विशिष्ट परिवेश देश–काल और स्थान को आधार बनाकर युग–विशेष के 'एक मामूली आदमी' का इतिहास कहलवाने में सहायक हुए हैं। उपन्यास और इतिहास का यह सामान्य पक्ष 'चयनात्मकता' नामक तत्त्व से दोनों को भिन्न स्तरों पर ला खड़ा करता है। इतिहासकार को चयन की छूट नहीं होती है जबकि उपन्यासकार अपनी इच्छानुसार नए पात्रों की सृष्टि भी कर सकता है और अपने कथ्य को प्रभावी बनाने के लिए तथ्यों का उपयोग भी कर सकता है। वास्तव में आख्यान तभी बनता है जब तथ्य में निजी–दृष्टिकोण (Subjectivity) का समावेश हो जाता है। उसी के माध्यम से लेखक के व्यक्तित्व का प्रख्यापन होता है, रचना एक नया रूप धारण कर लेती है। यही कारण है कि एक ही तथ्य को लेकर अनेक प्रकार की रचनाएँ रची जाती हैं और उनका रूप भी भिन्न–भिन्न होता है। 'रामचरितमानस' की सीता 'अग्निलीक'

की सीता से नितान्त भिन्न है। युगानुरूप तुलसी जहाँ उसे अपनी पीड़ा को व्यक्त करने का अवसर नहीं दे सके वहीं दूसरी ओर भारतभूषण अग्रवाल ने उसके आक्रोश को व्यक्त करने का पूर्ण अवसर दिया है। इसी तरह 'गीता' के दार्शनिक कृष्ण सूर के यहाँ प्रेमी हैं तो हरिऔध की लेखनी के स्पर्श से समाज सुधारक रूप से परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार कलाकार की तूलिका युगानुरूप नए–नए रंगों से पात्रों में नया रंग भरती रहती है और साहित्य को कभी बासी नहीं होने देती।

साहित्य तथ्यों के बंधन से मुक्त होता है तो क्या इतिहास तथ्यों का संकलन भर है? और क्या साहित्यकार की कल्पना इतिहास से सर्वथा अछूती रहती है? एक समय इतिहास में इसी पद्धति का प्रयोग किया जाता था। उसमें बड़ाइयों, विद्रोहों तथा राजनीतिक षड्यन्त्रों की सूचना भर होती थी। जॉन रिचर्ड ग्रीन ने ऐसे इतिहास को ढोल और तूर्य का इतिहास कहा है।[6] लेकिन जब इतिहास के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और इसमें साधारण–जन, उनकी जीवन–दशा, देश समाज, उसकी गतिविधियों तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों का समावेश हो गया तो इतिहास की परिभाषा भी परिवर्तित हो गयी। वस्तुतः इतिहास भी जीवन के शाश्वत चिरन्तन स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाला साधन है। इतिहास की आधुनिक परिकल्पना में यह मात्र घटनाओं, पात्रों, तथ्यों का संकलन नहीं है, इसकी सीमाएँ विस्तृत हो चुकी हैं। हेरोडोटस ने इतिहास के लक्षण बताते हुए कहा है कि – "यह मानवीय विधा है, अर्थात् इसका उद्देश्य मानवी कार्य–कलापों का अध्ययन करना है।"[7]

यही नहीं, इतिहास को तो दर्शन का विषय भी माना जा रहा है। वाल्टेयर के अनुसार – "इतिहास मानव कार्य–कलाप की समग्र व्यंजनाओं का वृतान्त है।

इसमें जीवन के समस्त पक्षों का सामंजस्य सन्निहित रहता है। अतः इसका लक्ष्य भी राजनीतिक घटनाओं की तालिका मात्र प्रस्तुत करना नहीं है वरन् जीवन के विविध पक्षों की चित्रमय अभिव्यक्ति उपस्थित करना है।"[8] इस विशिष्टता के समावेश के पश्चात् साहित्य और इतिहास में अंतर कैसे किया जाए क्योंकि साहित्य भी जीवन का आख्यान प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार अपनी प्रतिभा द्वारा जिस सौन्दर्य की सृष्टि करता है, इतिहास में उसका अभाव रहता है। विगत जीवन के विविध पक्षों की चित्रमय अभिव्यक्ति होते हुए भी इतिहास शुष्क होता है, उसमें साहित्य की भाँति संवेदनशक्ति तथा रागात्मकता नहीं होती है।

प्रेमचन्द ने एक स्थान पर कहा है कि – "कथा में नाम और सन् के सिवा सब कुछ सत्य है और इतिहास में नाम और सन् के सिवा कुछ भी सत्य नहीं, गल्पकार अपनी रचनाओं को जिस साँचे में चाहे ढाल सकता है किन्तु किसी भी दशा में भी वह उस महान सत्य की अवहेलना नहीं कर सकता जो जीवन सत्य कहलाता है।"[9] किसी तथ्य के पार्श्व में छिपी हुई वास्तविकता को प्रकट करने में इतिहास अक्षम रहता है। यह काम उपन्यासकार करता है।

इतिहास और उपन्यास दो समानान्तर धाराएँ हैं – एक तथ्य है तो दूसरा सत्य। ऐसे में ऐतिहासिक कल्पना इन दोनों के मध्य सेतु का कार्य करती है और ऐतिहासिक उपन्यास की रचना के निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अतीत का पुनःसृजन करने हेतु यह अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' एक प्रकार से ऐतिहासिक कल्पना के माध्यम से अपने समय को जानने पहचानने का एक रचनात्मक प्रयास है। ऐतिहासिक कल्पना इतिहास नहीं है अपितु कला है। जहाँ इतिहास एक वस्तुगत वास्तविकता है वहीं ऐतिहासिक

कल्पना एक वैयक्तिक प्रतिभा द्वारा की गई पुनः रचना या पुनःसृष्टि है। ऐतिहासिक कल्पना में कल्पना तत्त्व के साथ–साथ लेखक की चयन–दृष्टि तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण का समावेश रहता है। भाषा भी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है ऐतिहासिक कल्पना को वास्तविक प्रतीत कराने का। ऐतिहासिक आख्यानकार इतिहास के किसी विशिष्ट कालखण्ड का चयन करता है और उसके माध्यम से अपनी जीवन–दृष्टि को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। लेखक के चयन के पीछे उसकी दृष्टि और विचारधारा का योगदान होता है। ऐसा देखा गया है कि एक ही घटना या कालखण्ड को लेकर अलग–अलग रचनाकारों ने लिखा और एक रचना का निर्मित रूप दूसरे से बिल्कुल भिन्न था। यानी रचना में लेखक के व्यक्तित्व का समावेश स्वयं ही हो जाता है। अतः यह रचनाकार का निजी व्यक्तित्व ही है जो रचना में अनेक रूपों में व्यक्त होता है।

प्राचीनकाल में हमारे यहाँ इतिहास और कथा के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं थी। उस समय के साहित्य में दोनों का मिश्रित रूप मिलता है। इसकी मुख्य कमी है कालक्रम की पूर्ण उपेक्षा, जिसके कारण तत्कालीन युग से सम्बन्धित घटनाएँ जो कहीं न कहीं सत्य रही होंगी, की प्रामाणिकता पर सन्देह होता है। साथ ही इन रचनाकारों ने अपने नायकों में ऐसे ऐसे गुणों का आरोपण किया है कि वे सत्य से दूर ही प्रतीत होंते हैं। "हमारे इतिहास के पुराने जमाने में इतिहास नहीं था। इतिहास शब्द तो था पर इसका अर्थ कुछ और था। 'रामायण' और 'महाभारत' की बातों को, पुराणों की कहानियों को, इतिहास का नाम दे दिया गया था। इनमें आज के इतिहास के ढंग से न घटनाओं के काल का निर्णय है और न व्यक्तियों एवं समूहों के जीवन का क्रमबद्ध वर्णन।[10] संस्कृत साहित्य में आख्यान

का अर्थ इतिहास से लिया जाता था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है – "कथा की कहानी कल्पित हुआ करती थी और आख्यायिका की ऐतिहासिक। कादम्बरी कथा है और 'हर्षचरित' आख्यायिका।"[11] बाणभट्ट ने इस ग्रन्थ में हर्षवर्धन के जीवन तथा 7वीं शती पूर्व के राजनैतिक जीवन तथा परिस्थितियों का चित्रण किया। लेकिन इसमें इतिहास की अपेक्षा काव्य ही अधिक उभरकर आया है। बाण ने हर्ष तथा उसके समय की कुछ घटनाओं को आधार बनाकर अपनी कल्पना से, अलंकृत शैली में इस काव्य–ग्रन्थ की रचना की थी। इसे पूर्ण रूप से ऐतिहासिक तो नहीं कहा जा सकता है लेकिन ऐतिहासिक कथा की दृष्टि से इसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। आज का उपन्यास न तो मात्र प्राचीन कथा का विकसित रूप है और न ही आज इतिहास के उस रूप का अनुसरण किया जाता है। आधुनिक उपन्यास पश्चिम की देन है और इतिहास, कालक्रम तथा नवीन इतिहास दृष्टि से संपृक्त है। अतः इतिहास और उपन्यास की आधुनिक परिभाषाओं के अनुसार देखा जाए तो प्राचीन ऐतिहासिक कथा–आख्यायिका एवं नाट्य काव्यों में कल्पना का खुलकर प्रयोग किया गया है जबकि आधुनिक ऐतिहासिक कथा–रूप इतिहास की नींव पर आधारित हैं। उनमें ऐतिहासिक यथार्थ प्रस्तुत करने के साथ–साथ जीवन का यथार्थ भी प्रस्तुत किया गया है। तिस पर भी आधुनिक ऐतिहासिक उपन्यास और प्राचीन कथा–आख्यायिकाओं के सम्बन्ध को एकदम नकारा नहीं जा सकता है। कहीं न कहीं उसमें आज के विकसित रूप के बीज दृष्टिगोचर होते हैं। डॉ॰ जगदीश गुप्त के अनुसार – "वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की इस पुरातन समीपता की नूतन समन्वयात्मक अभिव्यक्ति है, जिसके पीछे युग–युग के अतीतोन्मुखी संस्कार निहित हैं। उसकी उत्पत्ति विगत में

आत्मविस्तार की आंतरिक मानवीय वृत्ति से हुई है। कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिह्य से उसी प्रकार अपने को मुक्त नहीं कर सकती जिस प्रकार इतिहास अपने को कल्पना से।"[12] गुप्त जी यहाँ न सिर्फ ऐतिहासिक उपन्यास के विकास–क्रम पर प्रकाश डालते हैं अपितु इतिहास तथा आख्यान की परस्पर भूमिका पर भी बल देते हैं। यह भूमिका ऐतिहासिक उपन्यास में निर्धारित होती है।

बेनेदेतो क्रोंचे का प्रसिद्ध कथन है – "जहाँ आख्यान नहीं है वहाँ कोई इतिहास नहीं है।"[13] इतिहास अपने तथ्यों से किसी समय विशेष के सच को अपनी सम्पूर्णता में प्रस्तुत नहीं कर पाता है। यह कार्य आख्यान के सहयोग से पूर्णता पाता है। आख्यानकार किसी घटना को अपनी संवेदनशक्ति और कल्पना से ऐसा रूप प्रदान करता है कि वह आख्यान के रूप में जीवंत होकर पाठक के सम्मुख अपनी सम्पूर्ण शक्ति और प्राणवत्ता के साथ उपस्थित होकर आ जाता है। यह बात एक उदाहरण द्वारा और भी स्पष्ट हो जाती है। 1912 ई॰ में डूबे जहाज की सूचना, घटनाएँ तथा उससे जुड़े सच मात्र एक घटना ही बनकर रह गए। सूचना में उन लोगों की पीड़ा का अंकन नहीं हो पाया जिन्होंने इस विभीषिका को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से झेला था। जब इस वास्तविक घटना पर आधारित एक फिल्म का निर्माण हुआ तो कल्पना द्वारा सृजित की गई घटनाओं और पात्रों ने उन प्राथमिक घटनाओं में वह प्राणवत्ता ला दी जिससे अतीत का वह पृष्ठ अपनी पूर्ण संवेदनशक्ति के साथ उस घटना, बिछोह की पीड़ा को उनकी भयावहता के साथ पुनः जीवित कर दिया। यह रचना में प्रयुक्त कल्पना की शक्ति की ओर संकेत करता है।

अतः आख्यान इतिहास के कालखण्ड में प्रवेश करके उसके घटनाक्रम के पार्श्व में सक्रिय मानवबुद्धि की आंतरिक संगतियों का पता लगाता है। यह कार्य

वह कल्पना की सहायता से पूर्ण करता है।

इतिहास और आख्यान दोनों ही भिन्न रूप होते हुए भी कल्पना तत्त्व का अंश समाहित किए रहते हैं। आख्यान में इसका परिमाण अधिक होता है लेकिन इतिहास वैज्ञानिक विषय होते हुए भी घटनाओं की श्रृंखला की टूटी कड़ियों को जोड़ने में अनुमान का सहारा लेता है। स्पष्ट है कि कल्पना का रूप दोनों क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न होता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना के प्रयोग में इतना स्वतन्त्र नहीं होता है कि वह तथ्यों को तोड़–मरोड़कर मूल का रूप ही लुप्त कर दे। ऐसा करने से इतिहास रस में बाधा ही पड़ेगी। यह इतिहास रस ही है जिसके आस्वाद हेतु साहित्यकार ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसे 'ऐतिहासिक रस' नाम से अभिहित किया है और महाकाव्यों का प्राण माना है। डॉ॰ शशिभूषण सिंहल ने ऐतिहासिक उपन्यासकार द्वारा इतिहास के प्रयोग के विषय में लिखा है – "इतिहास मुख्य रूप से उसके लिए रस–सृष्टि का अचूक साधन है। वह उसके द्वारा पाठक के चित्त को एकाग्र कर लेता है। साथ ही, इतिहास के आश्रय द्वारा अपने वृत्त तथा कथ्य को प्रामाणिकता प्रदान करता है। वह रचना को भरपूर ऐतिहासिक रंग देकर उसे वर्तमान के लिए अधिकाधिक ग्राह्य बनाता है तथा कथ्य को युग विशेष की परिधि से ऊपर उठाकर सार्वकालिक मानवीय सत्य का रूप देने का प्रयत्न करता है। सामाजिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का अध्ययन उसकी कला को सप्राण बनाता है। प्रचलित–अप्रचलित तथ्यों का अन्तर्दर्शन कर, उन्हें नित–नूतन प्रयोगों से मण्डित करना उसे सर्वाधिक प्रिय है।[14]

उपर्युक्त वक्तव्य में ऐतिहासिक रस की व्याख्या बहुत व्यापक स्तर पर

की गई है। इसमें ऐतिहासिक उपन्यास की विशेषताएँ भी हमारे सामने आती हैं – इतिहास का आश्रय लेकर वर्तमान के लिए अधिकाधिक ग्राह्य बनना, तथा प्रचलित अप्रचलित तत्त्वों का अन्तर्दर्शन कर उन्हें नित नूतन प्रयोगों से मंडित करना। इसके अन्तर्गत मिथक, जनश्रुतियाँ तथा किंवदन्तियों का समावेश हो जाता है। इतिहास की टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार उपर्युक्त तत्त्वों की सहायता लेकर नवीन सृष्टि करता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी रचना के माध्यम से अतीत का पुनर्चित्रण करता है। वह अतीत को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं कर देता अपितु इतिहास की किसी घटना अथवा युग को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करता है। रामदरश मिश्र का कहना है कि "आधुनिक बोध वाला साहित्यकार इतिहास की सामग्रियों को नए संदर्भों में स्वीकार करता है। ये नए संदर्भ इतिहास की मृत सामग्री को नया स्वर प्रदान कर उन्हें वर्तमान का जीवन देते हैं, उन्हें इतिहास के गह्वर से निकालकर गतिमान जीवन के मैदानों में ला खड़ा करते हैं।..... वह इतिहासकार की भाँति तमाम बीती बातों को उनकी अनेक स्थूल रंग रेखाओं में पुनः प्रस्तुत नहीं करता। वह सर्जक के गहन दायित्व को समझ कर उन्हें एक गहरे मानवीय सत्य के साथ जोड़ता है।"[15] प्रसाद ने अपने नाटकों में ग्रीक, शक और हूण जैसे आक्रान्ताओं को अंग्रेजी शासकों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। उनके पात्रों को राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की चिन्ता है। लेकिन अपने कथ्य को उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य का उल्लेख किए बिना ही व्यक्त कर दिया है। उस समय जबकि अंग्रेज अपने आपको सर्वश्रेष्ठ जाति के रूप में प्रमाणित कर रहे थे। प्रसाद के नाटकों ने भारत के स्वर्णिम अतीत को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करके जनमानस के हृदय

और मस्तिष्क को आंदोलित करने का क्रान्तिकारी प्रयास किया था। जिसे हम इतिहास की पुनर्व्याख्या कह रहे हैं उसे द्वितीयक कर्म कहना एक तरह से अन्याय ही होगा क्योंकि उपन्यासकार की रचना इतिहास के तथ्य के पीछे छिपे सत्य का फलात्मक निरूपण होती है। एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक आख्यान अपनी अन्तर्वस्तु के आधार पर इतिहास की रचना ही सिद्ध होता है। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास इस श्रेणी के अन्तर्गत गिने जा सकते हैं। अतः ऐतिहासिक उपन्यास अपने निर्मित रूप में वह शक्ति उपस्थित कर देता है जो मात्र इतिहास से नहीं आ सकती।

कोई भी उपन्यास सिर्फ अतीत की कुछ घटनाओं को लेकर या उस समय के बाहरी परिवेश का वर्णन करके ही ऐतिहासिक सिद्ध नहीं होता। ऐतिहासिक उपन्यास के लिए यह आवश्यक है कि उसमें अतीत की चेतना इस प्रकार से व्यक्त होनी चाहिए कि वह आजकल के पढ़ने वाले को अपने से अलग स्पष्ट रूप से दिखाई दे। इस बात को आचार्य चतुरसेन शास्त्री और दूसरी ओर वृंदावनलाल वर्मा तथा राहुल के उपन्यासों के अध्ययन से समझा जा सकता है।

इतिहास में ऐसी कोई समझ नहीं है कि वह अच्छी चीज को अच्छी माने और रखे। आख्यान को इस क्षेत्र में जो छूट मिली हुई है उसी का उपयोग करके रचनाकार अपने दृष्टिकोण तथा उद्देश्य को स्पष्ट करता है। ये उद्देश्य अलग–अलग हो सकते हैं। कुछ उपन्यासकार मात्र अतीत की संस्कृति का चित्रण करने के लिए ऐतिहासिक वितान खड़ा कर लेते हैं तो कुछ इतिहास की घटनाओं से पाठकों को अवगत कराने के लिए, कुछ उपन्यासकार उपन्यासों के माध्यम से अपने युग की उन घटनाओं के संदर्भ में व्याख्या करना चाहते हैं। किसी विशिष्ट उद्देश्य को लेकर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाला उपन्यासकार इतिहास से उन्हीं घटनाओं का चुनाव

करेगा जो उसके उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हों। ऐतिहासिक पात्रों तथा घटनाओं के साथ वह कुछ काल्पनिक पात्रों तथा परिस्थितियों की सृष्टि भी करेगा। ये सभी मिलकर रचना को और प्रभावी बना देते हैं। उपन्यास द्वारा सृजित ये काल्पनिक पात्र कथा प्रवाह में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास 'मृगनयनी' में लाखी और अटल जैसे पात्रों तथा उनकी प्रेमकथा की सृष्टि करके कथा को मार्मिकता प्रदान की है। लेखक अपने उद्देश्य को व्यक्त करने के लिए कुछ किंवदन्तियों का आश्रय लेता है, उनका प्रयोग अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों में देखा जा सकता है।

इतिहास के पात्र ऐतिहासिक आख्यान के क्षेत्र में आते ही जी उठते हैं। इतिहास के प्रति जिज्ञासा रखने वाला कोई भी व्यक्ति ऐतिहासिक चरित्र से सम्बन्धित अनेक पहलुओं को जानने के लिए उत्सुक रहता है। इतिहास उस चरित्र से सम्बन्धित घटनाओं की सूचना तो देता है किन्तु फिर भी हम उसके मानवी रूप से परिचित होने की इच्छा को दबा नहीं पाते। इसकी पूर्ति रचनाकार करता है। वह उस पात्र में चेतना का रंग भरकर उसके मनोविज्ञान से साक्षात्कार करता है। यही कारण है कि पाठक को ऐसी रचना पढ़ते समय सत्य की प्रतीति होने लगती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काल्पनिक प्रसंगों की उद्‌भावना करके संस्कृत के यशस्वी कवि बाणभट्ट को अपनी सम्पूर्ण चरित्रगत विशेषताओं सहित सजीव कर दिया है।

कभी–कभी इतिहास भी अपने तथ्यों के बावजूद सत्य का अंकन नहीं कर पाता है। कारण यह कि, कभी–कभी यह भी शासकों के हाथों की कठपुतली बन जाता है। भारत पर समय–समय पर कई विदेशी शासकों का शासन रहा। अंग्रेजों ने ही इस देश पर लगभग 300 वर्षों तक शासन किया। उन्होंने यहाँ के

इतिहास को मनचाहे ढंग से तोड़मरोड़ा तथा व्यक्ति–विशेष के प्रति झूठा बयान लिखा। इसके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारों ने अपने इतिहास को महत्त्व प्रदान करने के लिए भारत के इतिहास को सदा निम्न दृष्टि से देखने का प्रयास किया। अतः ऐतिहासिक उपन्यासकार सत्य पक्ष को प्रस्तुत करके अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है। 1857 ई॰ के संग्राम को अंग्रेजों ने गदर या विद्रोह नाम दिया लेकिन उनकी तथा कुछ अन्य इतिहासकारों की मान्यता थी कि झाँसी की रानी अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी थी न कि स्वराज्य के लिए। किन्तु झाँसी की रानी के सम्बन्ध में बुंदेलखण्ड में प्रचलित जन–भावना से यह धारणा मेल नहीं खाती। वर्मा जी ने अत्यन्त प्रामाणिक साक्ष्यों का सहारा लेकर इस उपन्यास में यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि लक्ष्मीबाई के हृदय में बचपन से ही पराधीनता के प्रति विद्रोह की भावना वर्तमान थी और अवसर पाकर सन् 1857 ई॰ में वही भावना स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में फूट पड़ी। अतः सत्य के बदलते स्वरूप को चित्रित करने में ऐतिहासिक उपन्यासकार अहम् भूमिका निभाता है। इस तरह से उपन्यासकार इतिहास का पुनर्लेखक सिद्ध होता है। उदाहरण के लिए इतिहास की एक घटना को लिया जा सकता है। "शताब्दी के पहले दशक के क्रान्तिकारी जिन स्त्रोतों से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे उनमें धर्म के अलावा एक था 1857 ई॰ का भारत का पहला स्वाधीनता संग्राम। इस विषय पर 1907 या 1908 ई॰ में लंदन में लिखी गई वीर सावरकर की पुस्तक 'इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ' ने अपनी तमाम अपर्याप्तताओं के बावजूद, जो उस दौर में और उस समय के हालातों में स्वाभाविक थी, बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस विषय पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा फैलाए गए लांछनों तथा उनके झूठे ऐतिहासिक लेखन

की धज्जी उड़ा कर इस पुस्तक ने बहुत बड़ा काम किया। इसने बातों को सही तौर पर सामने रखा। इस किताब पर ब्रिटिश शासकों ने फौरन प्रतिबन्ध लगा दिया, लेकिन फिर भी यह मेहनत से और गुप्त रूप से तैयार की गई पाण्डुलिपि के रूप में भारत के उस समय के क्रान्तिकारियों के बीच घूमती रही।"[16] ऐसे में इतिहास की विशुद्धता तथा तथ्यसापेक्ष्य ज्ञान भी प्रश्नों के घेरे में आ जाते हैं।

कुछ आलोचकों ने इतिहास तथा उपन्यास को सर्वथा भिन्न क्षेत्र मानकर इनके समन्वित रूप ऐतिहासिक आख्यान अथवा उपन्यास की आलोचना की है। उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों का पढ़ना निषिद्ध माना है क्योंकि ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि एक तरह से संकर जाति की उत्पत्ति है तथा उसका पाठकों तथा भावी पीढ़ी द्वारा पढ़ा जाना उनको पथभ्रष्ट कर भुलावा देना मात्र है। कुछ विद्वानों ने दोनों के सम्बन्धों पर आपत्ति प्रकट करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासों को इतिहास का घातक शत्रु माना है। उन्होंने ऐसे ऐतिहासिक उपन्यासों को घटिया इतिहास और निकृष्ट उपन्यास कहा है। कुल मिलाकर ऐसे आलोचक ऐतिहासिक उपन्यासों को हेय दृष्टि से देखते हैं और मानते हैं कि न तो उपन्यास को इतिहास की सीमा में प्रवेश करना चाहिए और न इतिहास को उपन्यास की। क्योंकि इससे दोनों की हानि होती है, कोई मूल्यवान परिणाम नहीं निकलता।

ऐसे निष्कर्ष निकालने वाले आलोचक संभवतः इतिहास के प्रति पूर्ण शुद्धतावादी पूर्वग्रह युक्त दृष्टिकोण के कारण ऐसा सोचते हैं। अपने विवेचन में हम यह पहले ही स्पष्ट कर आए हैं कि इतिहास बीती हुई घटनाओं का संयोजन भर नहीं है, और न ही उपन्यास कपोल–कल्पना है। ऐसा रवैया रखने वाले यह भूल जाते हैं कि इतिहास चिरन्तन मानवीय प्रकृति के संतुलन में बीते हुए सांस्कृतिक

तथा सामाजिक जीवन के आंतरिक सत्यों की खोज एवं सारे राग–विरागों के साथ अतीत का यथार्थ है और उपन्यास स्वभावतः यथार्थ को पकड़ता है, चाहे वह अतीत का यथार्थ हो या वर्तमान का। अतः उपन्यास तथा इतिहास का परस्पर संयोजन अनुचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि दोनों मिलकर जिस नवीन रूप की निर्मिति का कारण बनते हैं वह अधिकाधिक सत्य, तथ्यपूर्ण, संवेदनायुक्त, प्रभावी तथा सम्प्रेषणीय सिद्ध होता है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के एकं अन्य प्रकार की चर्चा समीक्षकों ने की है। वह है – समकालीन ऐतिहासिक उपन्यास, जिसे समीक्षकों ने सर्वाधिक विश्वसनीय माना है। कारण यह है कि इसका निर्माण उसी समय होता है जब इतिहास बन रहा हो। ब्रांडर मैथ्यू ने अपनी पुस्तक 'द हिस्टोरिकल नॉवेल एण्ड अदर एसेज़ (1901) में लिखा है कि वास्तविक विश्वसनीय ऐतिहासिक उपन्यास वही है जिसका निर्माण उस समय हुआ हो जबकि इतिहास बन रहा हो। जी.एम. ट्रेवेलियन ने ऐसे उपन्यासों को समसामयिक ऐतिहासिक उपन्यास नाम दिया है। उनका कहना है कि – "यह समसामयिक आचार–व्यवहार अथवा वातावरण के कारण, कुछ समय बीत जाने पर ऐतिहासिक मूल्य के हो जाते हैं। फ्रेंच उपन्यासकार ड्यूमा रचित 'द शी वोल्वज ऑफ मैक्कॉल' तथा यशपाल का 'झूठा–सच' इसी श्रेणी के उपन्यास कहे जाते हैं। झूठा–सच में देश–विभाजन की त्रासदी का आँखों देखा हाल बयान किया गया है। सेठ गोविन्ददास का 'इन्दुमती' भी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में कांग्रेस के इतिहास को स्थान देता है। लेकिन इससे एक समस्या और खड़ी हो जाती है क्योंकि इस प्रकार तो सभी कथाएँ कुछ समय के पश्चात् ऐतिहासिक महत्त्व की हो जाएंगी। प्रसिद्ध आलोचक आनंद प्रकाश ने एक स्थान पर कहा है – "समकालीन

इतिहास जैसी चीज होते हुए भी नहीं होती, उसमें झूठ–सच का, मान्यता और तथ्य का ऐसा घाल–मेल होता है कि वह प्रायः गढ़ी हुई और निर्मित वस्तु जान पड़ती है।"[17] कोई भी ब्यौरा चाहे वह आँखों देखा ही क्यों न हो कुछ समय के बाद इतिहास कभी नहीं बन सकता। एक ही घटना को उसके समकालिक देखते या सुनते हैं तो अपने–अपने दृष्टिकोण तथा विचारधाराओं के अनुरूप उसका अर्थ लेते हैं। ऐसे में यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि वास्तविकता क्या है। यद्यपि आनंद प्रकाश ने समकालीनता की चर्चा इतिहास के सन्दर्भ में की है लेकिन यदि इसे साहित्य की दृष्टि से देखें तो भी अलग–अलग तरह की स्थितियाँ सामने आती हैं। यशपाल ने 1947 ई॰ की भारत की स्वतन्त्रता को हिन्दू–मुस्लिम दंगों के कोण से देखने का प्रयास किया है। 'अनित्य' दो भिन्न विचारधाराओं की तह में जाकर आज़ादी के स्वरूप तथा उसके प्रभावों की चर्चा करता है। अतः साहित्य तथा उसके रूप उपन्यास अथवा कहानी समाज तथा राजनीति की उथल–पुथल से अछूते नहीं रह पाते हैं। स्वतन्त्रता आंदोलन का अध्ययन करते समय बंकिमचन्द्र के 'आनंदमठ' की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। इस बात को आधुनिक इतिहासकारों (सुमित सरकार) ने भी स्वीकारा है।

इतिहास तथा साहित्य में निर्मिति का तत्त्व समान होता है, लेकिन फिर भी दोनों को एक नहीं माना जा सकता है। प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिनचन्द्र का कहना है कि – "कोई निर्मिति इतिहास तब बनती है जब वह तथ्यात्मकता से शक्ति और प्रामाणिकता ग्रहण कर ले।"[18] यह प्रामाणिकता और शक्ति इतिहासकारों के मध्य निरंतर चलने वाली चर्चाओं, वाद–विवादों और अंततः निष्कर्ष से प्राप्त होती है।

बिपिनचन्द्र का उपर्युक्त कथन इतिहास और उपन्यास के भेद को तो स्पष्ट कर देता है लेकिन ऐतिहासिक उपन्यास और सामान्य उपन्यास के मध्य भेद को कैसे स्पष्ट करेंगे? यदि हम ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा को देखें तो यह समस्या काफी हद तक स्वयं ही सुलझ जाती है। वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यास उसे ही माना गया है जिसकी कथावस्तु अतीत से सम्बद्ध होती है। किन्तु यह अतीत ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त किए अथवा तथ्यात्मक और प्रामाणिक होना चाहिए। ऐसे ही किसी तथ्य अथवा ऐतिहासिक महत्त्व की घटना को लेकर रचनाकार कल्पना के तन्तुओं से रचना के रूप में भव्य महल खड़ा करता है, जिसके माध्यम से वह तत्कालीन युग, व्यक्ति और घटनाओं को प्राणवान बनाने का प्रयत्न करता है।

उपर्युक्त विवेचन में आख्यान तथा इतिहास के स्वरूप तथा ऐतिहासिक आख्यान में उसके महत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया। यह सैद्धान्तिक विवेचन 'अनित्य' उपन्यास में आख्यान तथा इतिहास की भूमिका को समझने में पूर्ण योग देगा। इतिहास रस, इतिहास का पुनर्लेखन, समकालीनता आदि जिन भी प्रश्नों की चर्चा हमने इस अध्याय में की वे सभी 'अनित्य' में उपस्थित हैं। अतः यह अध्याय आगे के अध्यायों के लिए आधार प्रदान करेगा।

सन्दर्भ सूची

1.	कलिकथा वाया बाइपास – अलका सरावगी	पृष्ठ-207
2.	वर्तमान समय में साहित्य की प्रासंगिकता (लेख) वैचारिकी संकलन, मई 1996	पृष्ठ-4
3.	साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका – मैनेजर पाण्डेय	पृष्ठ-16–17
4.	उपन्यास लेखन विधा की चुनौती (लेख) हंस, जनवरी 99	पृष्ठ-111
5.	कलिकथा वाया बाइपास – अलका सरावगी	पृष्ठ-27
6.	The Varieties of History, editor Fritz Stern	पृष्ठ-26
7.	इतिहास दर्शन – डॉ॰ बुद्धप्रकाश	पृष्ठ-68
8.	वही	पृष्ठ-134
9.	प्रेमचन्द का अप्राप्य साहित्य (खण्ड 2) – कमलकिशोर गोयनका	पृष्ठ-366
10.	अनुसंधान की प्रक्रिया – सावित्री सिन्हा	पृष्ठ-110
11.	साहित्य सहचर – हजारी प्रसाद द्विवेदी	पृष्ठ-149
12.	आलोचना, अक्तूबर 1954	पृष्ठ-178
13.	Heyden White : The Content of the Form	पृष्ठ-28
14.	हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ॰ शशिभूषण सिंहल	पृष्ठ-254
15.	हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा – डॉ॰ रामदरश मिश्र	पृष्ठ-183
16.	भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज – चमनलाल, जगमोहन	पृष्ठ-21
17.	हंस, जनवरी 99, इतिहास और उपन्यास – आनन्द प्रकाश	पृष्ठ-8
18.	वही	पृष्ठ-8

अध्याय-2

मृदुला गर्ग का उपन्यास साहित्य

अध्याय–2
मृदुला गर्ग का उपन्यास साहित्य

आधुनिक हिन्दी लेखिकाओं में मृदुला गर्ग किसी परिचय की मोहताज़ नहीं हैं। वे उन लेखकों में से हैं जिन्होंने खड़ी बोली में महानगर के जीवन को आधार बनाकर अपने कथ्य को अभिव्यक्ति दी है। उनका कथ्य है – मानवीय संवेदना और इस संवेदना को वे निरंतर नए प्रयोगों और परिपक्व शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत करती रही हैं। उनकी रचनाओं में मात्र मानवीय संवेदनाएँ नहीं हैं अपितु अद्‌भुत विचारात्मकता है, नए–नए प्रश्न हैं, अभिव्यक्ति की चाह है और स्वतन्त्रता का रास्ता भी है। चाहे यह स्वतन्त्रता व्यक्ति की हो अथवा लेखक की, या फिर दोनों ही की।

कलकत्ता में जन्मी और दिल्ली में पली–बढ़ी मृदुला जी का लेखन–कर्म 32 वर्ष की आयु में आरम्भ हुआ। वस्तुतः वे अर्थशास्त्र की विद्यार्थी थीं लेकिन अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने लेखन को चुना तथा रचनात्मकता को अपने प्रिय विषय साहित्य में लगा दिया। यद्यपि उन्होंने तीन वर्ष तक अर्थशास्त्र का अध्यापन भी किया लेकिन आज स्वतन्त्र रूप से लेखन में सक्रिय हैं। सिर्फ उपन्यास बल्कि कहानी, निबन्ध और नाटक साहित्य के सभी रूपों में उनकी लेखनी का बराबर हस्तक्षेप रहा है। अब तक उनके छह उपन्यास, सात कहानी संग्रह, तीन नाटक और दो निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा वे समसामयिक विषयों पर भी निरंतर लिखती रही हैं।

मृदुला जी बहुमुखी प्रतिभा की धनी हैं। वे सिर्फ रचनाकार नहीं हैं, उपन्यास, कहानी आदि का लेखन करने के साथ–साथ पर्यावरण सामाजिक संदर्भों एवं

स्त्री–विमर्श पर भी लेख–स्तंभ आदि का नियमित लेखन करती रही हैं। इन्हीं विषयों पर उन्होंने अमरीका और यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थानों में व्याख्यान भी दिए हैं।

Jawaharlal Nehru University Library

वे एक्टिविस्ट भी हैं, स्त्रियों की स्वाधीनता से सम्बन्धित काम भी करती हैं। उनका यह रूप उनके लेखन में भी प्रकट होता है। स्त्री मुक्ति सम्बन्धी विचारों को कठगुलाब, उसके हिस्से की धूप, चित्तकोबरा आदि रचनाओं में देखा जा सकता है। उन्होंने ऐसी स्त्री के बारे में लिखा जो पति, घर, बच्चों के साथ रहते हुए भी अपना एक अलग व्यक्तित्व रखती थी, और उसका अहसास भी उसके दिल में था। उनकी स्त्री पात्रों में बौद्धिक विमर्श की भी क्षमता है। उसमें अस्तित्व–बोध तो है किन्तु अपराध बोध नहीं है। शरीर को लेकर उनमें आतंक की भावना नहीं है। वह बगैर किसी अपराध–बोध के दूसरे पुरुष से शारीरिक संबंध स्थापित करती है। कृष्णा सोबती ने भी अपने उपन्यासों (मित्रो मरजानी) में इस प्रकार के चित्रण किए हैं किन्तु उनके पात्रों में अपराध बोध है। मृदुला जी एक विद्रोही व्यक्ति तथा लेखिका हैं। उनका विद्रोह इस बात को लेकर है कि – "शरीर और मन का द्वैत पुरुष के लिए मान्य है तो स्त्री के लिए क्यों नहीं..... संभोग के समय चिंतन में रत रहने वाली स्त्री पुरुष के गले नहीं उतरी।"[1] उनके उपन्यास में चित्तकोबरा की नायिका इसी द्वैत में जीती है।

DISS 0,152,3,N381,7:g(V) 152 Po

स्त्री–लेखन के परम्परागत विषयों का बहिष्कार करके मृदुला जी ने इतिहास, राजनीति आदि का अपने विषय के रूप में चयन किया। 'अनित्य' इसका प्रमाण है जिसमें उन्होंने न सिर्फ राजनैतिक घटनाओं को आधार बनाया है बल्कि इतिहास का पुनर्लेखन भी किया है। साहित्य के विषय में उनका मानना है कि –

"रचनाकार के सृजन के मूल में उसका असंतोष रहता है। सत्ता, सामाजिक व्यवस्था, स्वीकृत मूल्यों और संस्कृति के प्रति उसका असंतोष और उससे उत्पन्न प्रश्नों के उत्तर में ही साहित्य लिखा जाता है।"[2] और इन उत्तरों को देते हुए वे आडम्बरों और पोंगापंथी का विरोध करती है। उनके लेखन की सच्चाई और बेबाकी ने उन्हें समय की सर्वाधिक चर्चित लेखिका बना दिया है।

मृदुला जी के लेखन में कोरी मानवीय संवेदनाएं नहीं हैं, अपितु बौद्धिकता के दर्शन होते हैं। उनका लेखन प्रश्नों से जूझता है। संबंधों को लेकर, स्त्री की मूल प्रवृत्ति और प्रकृति को लेकर, सामाजिक व्यवस्था, भारत के इतिहास और विश्व–इतिहास को लेकर अधिक प्रश्न उठाता है। इसी कारण उनके लेखन को बौद्धिक माना जाता है।

रचनाकार के अतिरिक्त वे आलोचना के क्षेत्र में भी अपना हस्तक्षेप रखती हैं। आलोचक के रूप में वे किसी भी कृति को उसकी संश्लिष्टता में देखने की पक्षधर हैं। उनका मानना है कि किसी भी कृति का मूल्यांकन पूर्वग्रहों से मुक्त होना चाहिए अन्यथा वह विचारधाराओं की लड़ाई लड़ने का अस्त्र बनकर रह जाती है "....इसलिए साहित्यिक कृति को उसके सम्पूर्ण रचनात्मक स्वरूप में विश्लेषित करने पर ही उसका कोई अर्थ होता है।"[3]

उनकी प्रकाशित कृतियाँ निम्नलिखित हैं :–

कहानी संग्रह

1. कितनी कैदें (इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन)

2. टुकड़ा–टुकड़ा आदमी (नेशनल पब्लिशिंग हाउस)

3. डैफोडिल जल रहे हैं (राधाकृष्ण प्रकाशन)

4. ग्लेशियर से (प्रभात प्रकाशन)

5. उर्फ सैम (राजकमल प्रकाशन)

6. शहर के नाम (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन)

7. समागम (सामयिक प्रकाशन)

नाटक

1. एक और अजनबी (नेशनल पब्लिशिंग हाऊस)

2. जादू का कालीन (राजकमल प्रकाशन)

3. तीन कैदें (इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन)

निबन्ध संग्रह

1. रंग ढंग (सामयिक प्रकाशन)

2. चुकते नहीं सवाल (सामयिक प्रकाशन)

उपन्यास

1. उनके हिस्से की धूप (अक्षर प्रकाशन)

2. वंशज (अक्षर प्रकाशन)

3. चित्तकोबरा (नेशनल पब्लिशिंग हाऊस)

4. अनित्य (नेशनल पब्लिशिंग हाऊस)

5. मैं और मैं (नेशनल पब्लिशिंग हाऊस)

6. कठगुलाब (भारतीय ज्ञानपीठ)

उनके उपन्यासों का परिचय, विश्लेषण तथा उनके कथ्य की विशेषताओं का परिचय इस प्रकार है :–

1. उसके हिस्से की धूप :

यह मृदुला जी का पहला उपन्यास है जिसकी पूरी कथा मनीषा, जितेन और मधुकर के इर्द–गिर्द घूमती है। उपन्यास की कहानी इस प्रकार है। चार साल बाद मनीषा की मुलाकात अचानक ही उसके पूर्व पति जितेन से नैनीताल में हो जाती है। चार वर्ष पूर्व टूट गए सम्बन्ध में न जाने ऐसा क्या रह जाता है कि वे दोनों पुनः एक–दूसरे के नजदीक आ जाते हैं। मनीषा ने जितेन को तलाक देकर मधुकर से पुनर्विवाह कर लिया था लेकिन वह यह जानकर सुखद आश्चर्य से भर जाती है कि जितेन ने मनीषा का स्थान किसी और को नहीं दिया है। मनीषा और जितेन पुनः नजदीक आ जाते हैं, पहले जितेन पति होते हुए भी बाधा नहीं था लेकिन आज मधुकर पति है परन्तु आशंका का कारण भी है। पात्र बदल जाते हैं, जितेन की जगह मधुकर आ जाता है परन्तु मनीषा वैसी की वैसी है, जहाँ की तहाँ। स्वतन्त्रता की इच्छा लिए, स्वतन्त्र निर्णय लेती हुई, विद्रोही, पर कभी कभी घुट जाने पर मजबूर। दरअसल मनीषा अपने जीवन की सार्थकता को खोजती है – पहले जितेन में फिर मधुकर में। लेकिन जब वह पाती है कि जितेन के पास अतिव्यस्तता के कारण उसकी भावनाओं को समझने का समय ही नहीं है तो उसे निरर्थकता–बोध होने लगता है। जितेन का प्रेम उसकी समझ में सिर्फ सैक्स तक सीमित रह जाता है, रात के अंधेरे के लिए, जो मनीषा के लिए मानसिक प्रताड़ना का कारण बन जाता है। इसी मानसिक द्वन्द्व के चलते वह प्रेम की दार्शनिक बहस में पड़ जाती है। वह मानने लगती है कि उसका प्रेम–विवाह होता तो जीवन कुछ और ही तरह

का होता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह एक रोमांटिक युवती है, हमेशा परिवर्तन चाहती है। गहराई से देखा जाए तो मनीषा के प्रश्न हर बौद्धिक चेतनता से सम्पन्न युवती के हो सकते हैं। मनीषा के अनुसार – "एक दूसरे को सचमुच चाहकर विवाह करो तो दूसरी बात होती है। प्रेम साधारण से साधारण मनुष्य को भी महान बना देता है। एक दूसरे को पाने की सच्ची ललक हमसे कठोर से कठोर साधना करा देती है, बड़े से बड़ा आत्मत्याग।"[4] मनीषा की यह सोच उसे समस्या के समाधान की जगह एक अन्य समस्या की ओर ले जाती है। जितेन से मधुकर के जीवन में प्रवेश करके व्यक्ति बदल जाते हैं, स्वभाव भी और काफी हद तक परिस्थितियाँ भी, लेकिन मनीषा जहाँ की तहाँ रहती है। उसका प्रेम भी चुक जाता है, या फिर वह उससे ऊब जाती है। अब वह प्रेम नहीं, प्रेम का अभिनय करने लगती है। मधुकर के पास मनीषा के लिए समय है लेकिन उसका मानना है कि मनीषा सिर्फ उसी की है, किसी और का अधिकार उस पर नहीं हो सकता। मनीषा जो जितेन के पास पाती है वह मधुकर के पास नहीं मिलता और जो मधुकर के पास है उसके लिए जितेन के जीवन में समय नहीं। वक्त उसके पीछे दौडता है और वह वक्त से आगे। वह जब भी मनीषा को पाना चाहता है, पा लेता है। मनीषा के पास सारी सुख–सुविधायें हैं लेकिन आत्मिक सुख नहीं। वह जितेन के साथ चार साल बाद पुनः शारीरिक संबंधों में रत होती है पर जितेन फोन की घण्टी बजते ही ऐसे चल देता है जैसे कुछ समय पहले कुछ हुआ ही नहीं। मनीषा को अपमान महसूस होता है, उसके सुख के क्षण जमीन पर गिरकर टूट और बिखर जाते हैं। उसी क्षण से मनीषा को यह अहसास होता है कि जीवन की सार्थकता गेंद की तरह जितेन और मधुकर के बीच लुढ़कने में नहीं है। अर्थ तो अपने भीतर

ही से तलाशना होता है। अतः यह उपन्यास न सिर्फ नारी अपितु व्यक्ति स्वातन्त्र्य की खोज का उपन्यास है।

भारतीय समाज में गहरी जड़ें जमा चुकी शारीरिक पवित्रता के संस्कार को मनीषा बार–बार तोड़ती है। ऐसा करके वह सैक्स की स्वतन्त्रता तो पा लेती है लेकिन अस्मिता की खोज फिर भी अधूरी रह जाती है। उपन्यास के अन्त में मनीषा का बुद्धिवाद प्रखर हो उठता है और बाह्य परिस्थितियों को स्वीकार करती हुई वह अपने भीतर लौटती है। जितेन की अतिव्यस्तता से अनजाने में उत्पन्न उपेक्षा की भावना और मधुकर का हद से ज्यादा अधिकार दिखाना, इतना कि मनीषा के लिए जीवन जीना ही बाध्यकारी हो जाता है। वह दोनों ही से ऊबकर आखिकार अपने जीवन की सार्थकता की तलाश में जुट जाती है और उसके उपादान भी खोज लेती है – "सहसा उसे कल का वह क्षण याद आ गया जब जितेन ने उसके हाथ में कलम थमाकर उससे उसके कहानी संकलन पर हस्ताक्षर कराये थे। जाना–पहचाना छोटा सा अपना नाम, उसे मुखपृष्ठ पर लिख दिया था। मनीषा! अपना नाम, बस, अधिक कुछ नहीं। पर उस मनीषा के 'म' के पृष्ठ पर फैलते–फैलते उसने जिस आत्मगौरव और सन्तोष का अनुभव किया था वह शायद और कभी नहीं किया, मधुकर का प्रेम जीतने पर भी नहीं।"[5] मनीषा लेखन में परितोष का अनुभव करती है। ऐसा नहीं है कि वह बहुत महान लेखिका थी लेकिन वह उसकी अपनी वस्तु है जिसके लिए वह किसी की मोहताज नहीं थी।

कुल मिलाकर प्रेम इस उपन्यास की समस्या बिल्कुल नहीं है। यह उपन्यास एक सत्य की प्रतीति जरूर करता है कि – 'प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता।' मनीषा के जीवन में रिक्तता इसीलिए बनी रही कि वह उसे किसी

न किसी पुरुष के माध्यम से भरते रहना चाहती थी। मृदुला जी का मानना है कि इतना घनत्व प्रेम में नहीं होता कि वह अंतरिक्ष जैसे फैले जीवन के शून्य को सदैव के लिए भर सके।" मनीषा सृजन सुख से तृप्त होना चाहती है तभी वह चाहती है कि लिखे और अपने व्यक्तित्व की कहानी को कागज के पन्नों पर उतार दे। वह शिशु का सृजन करना चाहती है लेकिन यह भी जानती है कि अकेले अपने में शिशु का जन्म, जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता – "वह एक मधुर दायित्व भरा जीवनपूरक अनुभव है जो वह नाहक छोड़ देना नहीं चाहती।"[6]

'कठगुलाब' की स्मिता की तरह अपराध बोध मनीषा में भी नहीं है। वह खुश है क्योंकि जो कुछ वह कर सकती थी, उसने किया। असल में यही मनीषा की स्वतन्त्रता व सार्थकता है साथ–ही साथ लेखन और उपन्यास की भी। यह उपन्यास अंततः यह निष्कर्ष अवश्य दे जाता है कि सुख और अर्थवत्ता व्यक्ति को अपने भीतर ही से मिलती है।

2. वंशज

'वंशज' मृदुला जी का दूसरा उपन्यास है। 'वंशज' पूर्ववर्ती उपन्यास से नितान्त भिन्न दो पीढ़ियों के संघर्ष की कथा है। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे यह राजनैतिक उपन्यास है। वास्तव में स्वतन्त्रता संघर्ष की थोड़ी बहुत दास्तान, सुधीर द्वारा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य बन जाना; गांधीजी की हत्या आदि घटनाएँ ही ऐसा भ्रम उत्पन्न करती हैं। लेकिन ध्यान से देखा जाए तो यह उपन्यास मि॰ शुक्ला और सुधीर दो पीढ़ियों के बीच बढ़ती खाई की कहानी है। आपसी समझ तथा भावात्मक संवाद के अभाव में यह दूरी और भी बढ़ती चली जाती है। एकाकीपन से त्रस्त सुधीर परिस्थितियों के कहर को न सह पाने के

कारण अंततः मानसिक विकृति के हालात में पहुँच जाता है। उपन्यास की कहानी इस प्रकार है – मि॰ शुक्ला कानपुर सेशन्स कोर्ट के महामान्य जज हैं। उनके एक पुत्र तथा पुत्री है – सुधीर तथा रेवा। जब रेवा मात्र चार वर्ष की थी तभी जज साहब की पत्नी की मृत्यु हो जाती है। जज साहब बच्चों के कारण दूसरा विवाह नहीं करते। माँ के आह्लाद से वंचित रेवा को तो जज साहब से ममता मिल जाती है पर सुधीर उपेक्षा के रेगिस्तान में भटकता रहता है। जज साहब रेवा से तो दुलराते हुए बात करते हैं किन्तु सुधीर हमेशा इसी इंतजार में रहता है कि उसके पिता उसे बेटा कहकर कब बुलायेंगे।

सुधीर और रेवा के बीच अंतर का कारण जज साहब की पारंपरिक धारणा है कि पुत्री पराया धन होती है परन्तु पुत्र वंशज होता है। इसी कारण सुधीर को कुछ बनाने के प्रयत्न में उस पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और मान्यताओं को थोपने का प्रयत्न करते हैं। अनुशासन सम्बन्धी गलत धारणा के कारण वे सुधीर के लिए 'डैडी' से 'जजसाहब' मात्र बनकर रह जाते हैं। यद्यपि वे फूलों की सूनी डाल देखकर कचोट से भर उठते हैं किन्तु सुधीर का नाम आते ही सारी संवेदनाएँ ताक पर रख देते हैं। परिणामस्वरूप सुधीर बेहद विद्रोही चरित्र बन जाता है। वह बिना सोचे समझे ही वह सब करने लगता है जो जज साहब का विरोध कर सके। इसीलिए वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य बन जाता है। उनके कार्यों में आस्था न होने पर भी वह सिर्फ जज साहब का विरोध करने में अपनी संतुष्टि पाता है। जज साहब लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं समझ पाते कि सुधीर के निरंतर विद्रोही और आक्रामक व्यवहार का कारण क्या है। सुधीर के जीवन में आने वाले सभी चरित्र उसकी बहन यहाँ तक कि पत्नी भी उसकी समस्याएँ बढ़ाते चले जाते हैं। सुधीर की पत्नी सविता उसके पागलपन में बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है।

जीवनसंगिनी के दायित्व को हमेशा से नकारती वह जज साहब की पुत्रवधु मात्र इसीलिए बनी रहती है क्योंकि उनके पास पैसा है, कोठी है, ऐश्वर्य है तथा सुख सुविधायें हैं। सविता का उद्देश्य एक व्यापारी की तरह उन सब चीजों को अपने तथा अपने बच्चों के लिए हथियाना है। सविता अपने पति की हीन–भावना की खाई को और भी गहरा कर देती है।

सुधीर के विश्वास को खण्डित करने वाले अनेक लोग हैं किन्तु समझने वाला कोई भी नहीं है। अविश्वास और एकाकीपन से उपजा पागलपन सुधीर को लील जाता है। उसके जीवन की परिणति बड़ी ही मार्मिक होती है।

पिता और पुत्र के द्वन्द्व की यह कहानी मौलिक और नए मनोवैज्ञानिक धरातल पर सृष्ट होने के कारण बेहद प्रभावशाली बन गई है।

यह उपन्यास न सिर्फ पारिवारिक समस्या को चित्रित करता है अपितु जज साहब के बहाने सामंती रंग–ढंग और अंग्रेजी बाह्य आडंबर के पोषक जज साहब पर व्यंग्य भी करता है। वे रेवा को कहीं न कहीं ज्यादा प्यार करते हैं क्योंकि वह एक गोरी–चिट्टी अंग्रेज लड़की है। नाजुक अदा–अदांज से सम्पन्न उस पुत्री को वे दुनियाँ की एक खरोंच तक नहीं लगने देना चाहते हैं और सुधीर साधारण नैन–नक्श का लड़का है अतः वे यह मानने लगते हैं कि उसे जीवन से कोई शिकायत नहीं हो सकती है।

नारी मनोविज्ञान की गहरी समझ रखने वाली मृदुला जी के सभी उपन्यासों में स्त्रियाँ बहुत सशक्त चरित्र रखती हैं लेकिन इस उपन्यास में वे बहुत दुर्बल हैं – मानवीय धरातल पर भी और नारी सुलभ गुणों में भी।

कुल मिलाकर यह उपन्यास पारिवारिक समस्याओं से जुड़े कई प्रश्नों को हमारे सामने खड़ा कर देता है।

3. चित्तकोबरा

'चित्तकोबरा' मृदुला जी का तीसरा प्रमुख और महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। लेखिका खुद ही स्वीकारती है कि जहाँ से 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका मनीषा की कथा खत्म होती है वहीं से चित्तकोबरा की मनु यात्रा आरम्भ करती है। यह उपन्यास जहाँ मृदुला जी के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है वहीं श्लील–अश्लील विषय को लेकर इस पर बहुत बावेला मचा। बात इस कदर बढ़ी कि 'सारिका' पत्रिका में इसके अंश–विशेष को अलग से फोकस करके लम्बा विवाद पैदा कर दिया गया। उस अंश के तहत पति–पत्नी के संभोग का सीधा–सपाट वर्णन था। इस 'अश्लीलता' के प्रश्न ने लेखिका को विवादों के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया।

उपन्यास की कहानी रिचर्ड और मनु के प्रेम की कथा है। मनु एक विवाहित स्त्री है और रिचर्ड एक विवाहित पुरुष। उनका प्रेम स्वार्थों, सरहदों और भौतिक संकीर्णताओं से नितांत दूर है। दोनों की मुलाकात जमशेदपुर के ड्रामेटिक क्लब में होती है। ड्रामा करते–करते मनु और रिचर्ड में प्रेम हो जाता है। उनका प्रेम शारीरिक है लेकिन धीरे–धीरे अमूर्त्त रूप धारण कर लेता है। उपन्यास की भूमिका में लेखिका स्वीकारती है – "मैं मानती हूँ, प्रेम अपने मूल में प्लैटोनिक होता है, यानी उसकी परमगति प्रेमी से एकात्म होने में है, एक शरीर होने में नहीं। प्रेम अपने आदर्श रूप को तभी प्राप्त करता है जब प्रेमी–प्रेमिका के लिए शारीरिकता का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। आत्मा का तब इतना घनिष्ठ समागम हो जाता है कि एक दूसरे की उपस्थिति अनुपस्थिति भी महत्त्वहीन हो उठती है। इष्ट का अस्तित्व ही सब कुछ है, उसकी उपस्थिति नगण्य। इष्ट के एब्सट्रेक्ट रूप में स्थापित होते

ही प्रेम सार्वभौमिक रूप पा जाता है। ऐसा ही है चित्तकोबरा का प्रेम।" इस प्रकार पूरा उपन्यास एक आदर्शवाद को साथ लेकर चलता है।

उपन्यास के सभी पात्र, चाहे वह रिचर्ड हो, मनु या फिर महेश – सबकी अपनी अलग पहचान है। महेश एक ऐसा पति है जिसका परिचय मनु का पति होना नहीं है, वह सिर्फ महेश है। इतना ही नहीं, वह परिस्थितियों को दूर बैठे दर्शक की तरह देखता और पहचानता आया है। वह जानता है कि मनु ने शादी के बाद एक आदर्श पत्नी की तरह समर्पण किया है और वह उससे निहायत प्यार करती आई है। लेकिन साथ ही वह यह भी स्वीकारता है कि वह उससे प्यार नहीं करता। असल में महेश के लिए मनु से विवाह एक तयशुदा, सुनिश्चित विवाह से अधिक कुछ नहीं था। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन विवाह–बंधन के रहते दूसरे से प्रेम करने की इजाजत देता है और यहाँ महेश का भी विवाह–बंधन में विश्वास नहीं है। जितेन मनीषा से प्रेम करता है पर स्वीकारता नहीं है, जबकि महेश मनु से साफ–साफ कह देता है कि वह उसे प्यार नहीं करता था। कुल मिलाकर दोनों ही पुरुष अपनी–अपनी जगह ईमानदार हैं, साथ ही आधुनिक भी।

महेश का चरित्र बहुत उदात्त है। ऐसे आदर्श चरित्र शायद ही वास्तविक धरातल पर मिलें। स्थिति की विडम्बना यह है कि महेश और मनु दोनों ही एक वक्त पर एक–दूसरे से प्रेम नहीं कर पाते। जिस क्षण मनु उसे प्रेम करना बंद करती है, महेश उसे उसी क्षण से प्यार करने लगता है। महेश मनु को प्यार करके खुश है। वह इस बारे में कोई तहकीकात नहीं करना चाहता कि उसके जीवन में दूसरा पुरुष कौन है। व्यक्ति के तौर पर मनु स्वतन्त्र है। ऐसी स्वतन्त्रता आम भारतीय स्त्री को नहीं मिलती है। वह तो बस अपनी भावनाओं और इच्छाओं के साथ चारदिवारी

में दम तोड़ती रहती है और पति के लिए शरीर बनी रहती है। 'चित्तकोबरा' ऐसे ही प्रेमविहीन सैक्स की वीभत्सता का चित्रण करते हुए विवादों के घेरे में बना रहा।

भाषा के स्तर पर उपन्यास में खासी कलात्मकता है। सिर्फ आलोचक की दृष्टि से उपन्यास को पढ़ना खासा मुश्किल लगता है, उपन्यास आत्मविभोर किए बिना नहीं छोड़ता।

4. अनित्य

मृदुला जी का चौथा उपन्यास 'अनित्य' अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से एकदम भिन्न है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के स्वरूप और उसकी परिणति से बहुत से लोगों को संतोष नहीं हुआ, लेखिका को भी नहीं। कारण यह रहा कि जिन उद्देश्यों को इस आंदोलन में प्रमुखता देनी चाहिए थी वे गौण हो गए और सत्ता हस्तांतरण को प्रमुखता मिली। अंग्रेजों की जगह हिन्दुस्तानियों ने गद्दी संभाल ली लेकिन हालात वैसे के वैसे रहे। सत्ताधारियों के सिर्फ चेहरे बदले, मानसिकता नहीं बदली। यह उपन्यास स्वतन्त्रता आन्दोलन के दो महत्त्वपूर्ण – अहिंसात्मक तथा क्रांतिकारी रूपों का विश्लेषण करता हुआ पिछले पचास सालों के निरंतर ह्रासोन्मुख समाज की कहानी को कहता है। उपन्यास के चौथे संस्करण की भूमिका में लेखिका ने अपने मत को व्यक्त किया है कि, स्वतन्त्रता आंदोलन में गांधीवादी और क्रान्तिकारी मार्गों में अंतर केवल हिंसा और अहिंसा को लेकर नहीं था बल्कि दोनों के उद्देश्यों में ही मूलभूत अंतर था। भगतसिंह के पास बाकायदा एक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रोग्राम था, जिसका उद्देश्य समाज के मौजूदा ढाँचे को बदल कर समाजवाद लाना था। गाँधी जी से उनका विरोध भी इसी तथ्य को लेकर था, जबकि गाँधीजी बलपूर्वक सत्ता लेने को असंभव मानते थे। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों

से सत्ता ले लेने पर वे पूँजीवाद से भी निबट लेंगे। लेखिका का मानना है कि परिणाम इसके ठीक विपरीत हुए और पूँजीवाद तथा अवसरवाद की जड़ें और भी अधिक गहरी होती गईं। 'अनित्य' ऐसे ही पतनशील समाज की कहानी को अविजित के माध्यम से कहता है।

अविजित, इस उपन्यास का नायक तथा केन्द्रीय पात्र है। वह ऐसा व्यक्ति है जो जीवन में स्वयं को वही सारी चीजें करता हुआ पाता है जिन्हें वह कभी भी करना नहीं चाहता था। उसके भी मूल्य हैं लेकिन उन्हें बनाए रखने की क्षमता नहीं है। काजल के प्रेम को ठुकराकर वह एक धनाढ्य परिवार की बेहद खूबसूरत लड़की से शादी कर लेता है। उसकी पत्नी श्यामा शारीरिक रूप से अस्वस्थ है। वह अविजित की किसी भी इच्छा को पूर्ण करने में असमर्थ भी है क्योंकि उसे लाचारी की आदत सी पड़ गई है। ऐसे ही दौर में जब संगीता उसके सामने आ जाती है तो वह बेबस हो जाता है और संगीता के साथ अन्याय कर बैठता है। उसकी दोनों बेटियाँ शुभा और प्रभा जीवन के प्रति नितांत भिन्न दृष्टिकोण को अपनाती हैं। शुभा शांत और आज्ञाकारी है जबकि प्रभा धाकड़ विद्रोही और अपनी वैयक्तिकता का अहसास करा देने वाली लड़की है।

अविजित डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए संगीता की सहायता तो करता है पर उसकी सहायता में दया–भावना है। अपने से कहीं छोटी संगीता के लिए वह कामान्ध हो जाता है और किसी भी साधारण आदमी की तरह बदले में अपनी क्षुद्र इच्छाओं की पूर्ति करता है। छले जाने के प्रतिक्रियास्वरूप वह बहुत बड़े उद्योगपति से शादी करती है जो बहुत धनवान है किन्तु देखने में बदसूरत है। पाँच साल के पश्चात् वह अविजित को अपनी शादी का कार्ड देने आती है और अपने क्रोध को

व्यक्त करने के लिए व्यंग्य करती है –

"लेडी डाक्टरों से आपका सरोकार? बच्चे गिरवाने का धंधा तो नहीं करने लगे।"

* * *

"अविजित जी".... "दो बातें याद रखिए। चंदे से पढ़ी हुई लड़कियाँ अपने प्रेमी के नाम के आगे भी "जी" लगाती हैं और शादी मालदार सेठों के बेटों से करती हैं।"

दूसरी ओर काजल बैनर्जी और चड्ढा हैं जो स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। उनके चरित्र में देशभक्ति के सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं। एक ओर जहाँ अविजित भौतिक सुख–सुविधाओं के पीछे जीवन–मूल्यों को त्याग देता है वहीं दूसरी ओर काजल बैनर्जी है जिसें सामाजिक और राजनैतिक रूप से स्थापित अपने पति को चुनौती देने का साहस है। चड्ढा जिस मार्ग को चुनता है मृत्युपर्यन्त उसी रास्ते पर चलते हुए अपनी सत्यनिष्ठा को बनाये रखता है। प्रभा क्रान्तिकारियों के ग्रुप में सम्मिलित हो जाती है और वह सब करती है जो अविजित चाहते हुए भी नहीं कर सका।

उपन्यास के अंत में सभी पात्र धीरे–धीरे चले जाते हैं और रह जाते हैं – श्यामा, अविजित, सुधांशु और खोखी। अतीत में निभाई गई भूमिका से अविजित में इतना ज्यादा अपराधबोध बढ़ जाता है कि वह डिलीरियम की हालत में पहुँच जाता है। इस यातना में सिर्फ वह है और उसका अपराधबोध। और उसका भविष्य है – सुधांशु, मानसिक रूप से मंद और तुतलाने वाला।

अनित्य नामक पात्र से ऐसा भ्रम होता है कि वह उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है, लेकिन उसका चरित्र उपन्यास की सोच को जरूर अभिव्यक्त करता है।

उसका महाजनी सभ्यता से पूर्णतः मोहभंग हो चुका है। मानसिक धरातल पर वह सदैव अविजित के साथ रहता है और उसके अपराधबोध को बढ़ाता है। वह यायावरी पात्र है जो इधर से उधर घूमता रहता है। हमेशा साथ रहने वाला अनित्य भी अंत में अविजित को छोड़कर चला जाता है।

पात्रों के चित्रण में लेखिका ने विविधता का परिचय दिया है। इतिहास–चेतना को उपन्यास में व्यक्त करने में वे सफल रही हैं। पात्रों के नामों में विरोधाभास है – अविजित (जिसे जीता न जा सके) जबकि वह हमेशा अपने से ही हारता रहा है। अनित्य (impermanent) लेकिन सदा मौजूद रहता है। संवादों और संवेदना के स्तर पर लेखिका यहाँ भी सफल रही हैं। 'वंशज' के सुधीर की तरह अविजित भी प्रलाप की स्थिति में पहुँच जाता है लेकिन यौन विषयक धारणा 'अनित्य' में कुण्ठित है, 'चित्तकोबरा' में उदात्त है। विविधता और नया प्रयोग लेखिका की विशेषता है और सफलता का कारण भी।

5. मैं और मैं

यह मृदुला जी का पाँचवा उपन्यास है। इस उपन्यास में माधवी के रूप में मृदुला जी का अपना जीवन प्रतिबिम्बित हुआ है तथा कहीं न कहीं व्यक्तिगत अनुभव भी शामिल हैं।

'अनित्य' और 'वंशज' के अतिरिक्त उनके सभी उपन्यासों में नारी की अस्मिता की खोज का कार्य जारी है – चाहे वह 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा हो, 'चित्तकोबरा' की मनु हो, 'मैं और मैं' की माधवी हो अथवा 'कठगुलाब' की स्मिता, मारियान, असीमा, दर्जिन बी आदि। इन सभी पात्रों में मानवीय पीड़ा, अस्तित्व चेतना बराबर मौजूद है।

इस उपन्यास की नायिका माधवी मृदुला गर्ग की भाँति साहित्य जगत में तेजी से उभरने और प्रतिष्ठित होने वाली लेखिका है। उसके पति राकेश उद्योगपति हैं, सुबह ही नाश्ता करके निकल जाते हैं, दोनों बच्चे भी सुबह स्कूल चले जाते हैं और दोपहर को लौटते हैं। जाहिर है कि सुख–सुविधा सम्पन्न और नौकरों वाले घर में उसे लिखने–पढ़ने को पर्याप्त समय और सुविधा रहती है। परिवार के प्रति समर्पित माधवी लेखन और पारिवारिक दायित्वों में सुन्दर संतुलन बनाकर रखती है। गृहिणी के अतिरिक्त व्यक्ति के रूप में वह अभिजात संस्कारों और आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी है। अपनी रचनात्मक प्रतिभा और व्यक्तित्व के आकर्षण के कारण दिल्ली के साहित्य जगत में बहुत से लेखकों और प्रकाशकों के साथ उसके निजी सम्बन्ध हैं।

तभी माधवी की शांत और सुस्थिर जिन्दगी में कौशल का प्रवेश होता है। कौशल एक प्रतिभाशाली लेखक है, लेकिनक कुरूप चेहरे की तरह उसके मन की भावनाएँ भी कुरूप हैं। वह एक कुण्ठित व्यक्ति है, मार्क्सवाद और प्रगतिवाद के नाम पर सिद्धान्तवादी बातें करता है लेकिन उसका व्यवहार एक लिजलिजे आदमी की तरह है। वह अपनी रचनाओं पर विमर्श के बहाने धीरे–धीरे माधवी की जिन्दगी में घुसपैठ कर लेता है। माधवी के मन में उसकी रचनाओं के प्रति सम्मान है लेकिन कौशल माधवी के लेखन की प्रशंसा की आड़ लेकर धीरे–धीरे उसकी जिन्दगी में मकड़ी की तरह जाल बुनता चला जाता है। पहली बार आटो के लिए दस रुपये माँगने से लेकर उसके पति से हजारों रुपये ऐंठने के बाद भी उसकी लपलपाती जीभ काबू में नहीं आती है। रुपये लेकर उसकी सोच पर प्रकाश डालती कुछ पंक्तियाँ दृष्ट्व्य हैं –

"चौड़ी सड़क पर आकर उसने जेब से दस का नोट निकाल कर परखा। 'एकदम करारा नोट है। बेदाग और खूबसूरत उस घर की मालकिन की तरह। उसके होंठों ने मुरकी खाई।'"[7]

कौशल की कुण्ठाओं के कुछ कारण हैं। उसके जीवन में (उसके अनुसार) कुछ भी सुंदर नहीं है। चेचक के दागों से गुदे बीबी के चेहरे से लेकर घर से सटे उस पोखर तक, जिसके किनारे बूचड़खाने के कसाई जानवरों की खाल उतारते हैं। उनके खून धुले पानी से उठते बदबू के भभकों जैसी ही रही है, हमेशा उसकी जिन्दगी।

कौशल की मानसिकता यह है कि उसे अपने अस्तित्व के आतंक से वशीभूत माधवी का फूलता–मुरझाता अस्तित्व चाहिए था। अपना अस्तित्व बचाए रखने का वह एकमात्र यही उपाय पाता है। कुल मिलाकर पूरा उपन्यास अस्तित्व संकट और उससे उबरने की कोशिश को दिखाता है।

इस उपन्यास के 'मैं और मैं' माधवी तथा कौशल ही हैं। दोनों का द्वन्द्व ही इस उपन्यास की कथा को बुनता चला जाता है। 'मैं और मैं' लेखिका माधवी के अपने अस्तित्व और अस्मिता की खोज है। माधवी जैसी स्वाभिमानी लेखिका यश (चर्चा और प्रशंसा) की चाहत के कारण ही कौशल के जाल में फँस जाती है और शेष उपन्यास में कौशल द्वारा बुने गए जाल को काटकर अपनी अस्मिता पर चढ़ी धूल की परतों को साफ करने में गुजार देती है।

कौशल की वर्ग–विद्वेष से उपजी कुण्ठा, लेखिका का अभिजात रहन–सहन, साहित्य जगत की कटु वास्तविकताएँ, लेखिका की संवेदनशीलता और उसका दुरुपयोग उपन्यास में गौर करने लायक है।

6. कठगुलाब

मृदुला जी के अब तक के उपन्यासों में सबसे सशक्त उपन्यास 'कठगुलाब' पाँच खण्डों में बँटा हुआ है। हर खण्ड में अलग–अलग पात्र अपनी कथा कहते हैं। इस प्रकार हर अध्याय स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा और विपिन की जुबान से बोलता है। मारियान के नॉवेल की तरह इस उपन्यास का नाम भी 'वुमेन ऑफ अर्थ' रखा जाए तो और भी ज्यादा सार्थक हो जाएगा। स्मिता की तरह पढ़ी–लिखी या स्वयं चुनकर विवाह करने वाली स्त्री, मारियान जैसी प्रबुद्ध, कर्मठ, स्वावलम्बी विदेशी महिला, नर्मदा जैसी बड़े–बड़े सिद्धान्तों से नितान्त दूर देसी औरत और असीमा जैसी घोर फेमिनिस्ट सभी इस उपन्यास में हैं। न सिर्फ ये पात्र बल्कि मारियान द्वारा सृजित रूथ, रॉकजान आदि सभी नारी पात्र सताये गये हैं। इन सभी का जीवन त्रासद है, और यही त्रासदी उन्हें एक–दूसरे से जोड़ती भी है। इन सभी पात्रों में घोर पीड़ा है – यह पीड़ा सृजन की है। माँ बनने को सभी व्याकुल हैं लेकिन त्रासद स्थिति यह है कि कोई भी माँ बन नहीं पाती। यहाँ तक कि विपिन जैसा पुरुष भी इसी बंजर अनुभव का शिकार है। परन्तु विपिन के परिप्रेक्ष्य में स्थितियाँ कुछ अलग हैं। नीरजा की किराए की कोख से भी विपिन पिता नहीं बन पाता, लेकिन तब ही उसे यह अहसास होता है कि स्त्री केवल कोख या देह भर नहीं है बल्कि इससे कहीं आगे जाकर और भी बहुत कुछ है। उसकी आँखें तब खुलती हैं जब नीरजा उसके स्पर्म को फ्रीज कराने के लिए कहती है ताकि जब जरूरत पड़े, उसका उपयोग कर सके।

'कठगुलाब' स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के ऊसर होते चले जाने की कथा है। असीमा द्वारा पुरुषों को 'हरामी' विशेषण से नवाजने पर भी यह उपन्यास पुरुष

और स्त्री के बीच की खाई को बढ़ाता नहीं है बल्कि साँझी दुनियाँ का स्वप्न बुनता है कि – नारी और पुरुष परस्पर पोषक हों, द्वन्द्व के मोहरे नहीं। कठगुलाब जो गुलाब नहीं है, फूल होकर भी उसकी पंखुड़ियाँ नर्म मुलायम नहीं हैं, काठ की तरह शुष्क और कठोर हैं। इसका कारण लेखिका के अनुसार अनादिकाल से पुरुष द्वारा प्रकृति (स्त्री) का दोहन (शोषण) है। न सिर्फ सम्बन्धों बल्कि कोख की ऊसरता भी इस यांत्रिकता और दोहन की परिणति है। लेकिन दुनिया चाहे कम्प्यूटर युग में प्रवेश कर गई हो औरत सृजन की चाह नहीं छोड़ पायी है, और इस चाहत का पूरा न होना भयंकर पीड़ादायक है। अतः 'कठगुलाब' एक ऐसा उपन्यास है जो सृजन की पीड़ा में पूर्णतः डूबा हुआ है।

यह उपन्यास कोरे फेमेनिस्टों की बिल्ली उड़ाता हुआ दिखाता है कि फेमिनिस्ट का मतलब मर्द हो जाना नहीं है। उससे तो असीमा जैसी पीड़ा ही मिलेगी। इसका अर्थ कोख हो जाना भी नहीं है (नीरजा के सम्बन्ध में), नमिता जैसी मौका परस्ती भी निकृष्ट है। असल में औरत का व्यक्ति हो जाना, संवदेनाओं से समृद्ध होना, स्वाभिमान से जीना ही फेमिनिज्म है। मारियान नमिता की तरह मजबूर लोगों से प्रतिशोध नहीं लेती बल्कि सृजन के रूप में शिशु की उपलब्धि न कर पाने पर शब्द–सृजन से अपने जीवन को सार्थक करती है। उपन्यास में सबसे ऊँचा और प्रभावशील व्यक्तित्व है – दर्जिन बीबी का। उन्हें पति के लिए 'देह' बन जाना मंजूर नहीं था और न ही चरित्रहीन पति के टुकड़ों पर पलना स्वीकार्य था। वह असीमा की भाँति सिद्धान्त नहीं बघारती बल्कि व्यवहार में लाकर एक मिसाल कायम करती है। उसके भव्य व्यक्तित्व के आगे सब कुछ फीका सा जान पड़ता है। विवाह बंधन से अंततः उसका भी विश्वास उठ सा गया है तभी तो वह

असीमा को बगैर विवाह किए विपिन के साथ रहने की इजाजत दे देती है। स्मिता का व्यक्तित्व भी तब ही निखर पाता है जब वह सारी हीनभावना से मुक्त हो जाती है। प्रतिशोध की ज्वाला खुद के व्यक्तित्व को भी क्षीण करती है, आत्मविस्तार उसके आवेग से मुक्त होने के बाद ही होता है। स्मिता और मारियान भी उसके बाद ही सार्थक हो पाती हैं।

संज्ञाशून्य औरतों के प्रति सहानुभूति दिखाना 'कठगुलाब' का उद्देश्य नहीं है, और न ही मृदुला जी का। उनका मन्तव्य है कि –

"अलग–अलग औरतों की ऐसी कहानी जो एक कहानी में गुँथी हुई हो, ये औरतें अलग–अलग सोच–विचार और सामाजिक स्थितियों की हों। 'कठगुलाब' में जो पढ़ा समझा जिया और भोगा है सब दूसरों का है। आत्मकथा इसमें नहीं है, सिवाय कठगुलाब उगाने के प्रसंग के, इसीलिए कठगुलाब मुझे श्रेष्ठ भी लगता है। कठगुलाब में सारे पात्रों में मैं हूँ – स्मिता में, नर्मदा में, सभी में, उम्र के इस पड़ाव पर अब सब को अपने भीतर समा सकने की सामर्थ्य आ गई है और अपने को भूल सकने का साहस जुटा लिया है, इसलिए कठगुलाब मेरे लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी।"[8]

उपर्युक्त उपन्यासों के विस्तारपूर्ण विवेचन से एक बात सामने आती है कि इन सभी में मानवीय संवेदनाओं को प्रमुखता दी गई है। यद्यपि 'अनित्य' शेष सभी उपन्यासों से भिन्न लगता है तथापि उसमें भी अविजित आदि पात्र संवेदनशील हैं। उनकी कहानियों की अपेक्षा उपन्यास अधिक प्रभावित करते हैं। शायद उपन्यास–लेखन में उन्होंने जीवन के विस्तार को अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है। कुल मिलाकर मृदुला गर्ग का यह उपन्यास संसार पाठकों की दुनियाँ में काफी चर्चित रहा है और प्रभावित करता रहा है।

सन्दर्भ सूची

1. वैचारिकी संकलन, अप्रैल 98, (मृदुला गर्ग से कमल कुमार की बातचीत : लेखन विकल्पों की खोज है) पृष्ठ-48
2. वही पृष्ठ-48
3. वैचारिकी संकलन (आत्मरचना – मृदुला गर्ग), जुलाई 97 पृष्ठ-51
4. उसके हिस्से की धूप – मृदुला गर्ग पृष्ठ-88
5. वही पृष्ठ-136
6. वही पृष्ठ-143
7. मैं और मैं — मृदुला गर्ग पृष्ठ-7
8. वैचारिकी संकलन, अप्रैल 1998 पृष्ठ-48

अध्याय-3

'अनित्य' में इतिहास

अध्याय–3
अनित्य में इतिहास

"जिन वर्गों के हाथ में सत्ता होती है वे अपने प्रचार के विशाल साधनों से बुरे प्रभाव को भी अच्छा कर दिखाते हैं और उसे अपने स्थापित स्वार्थों की रक्षा के लिए इस्तेमाल करते हैं।"[1]

इसी वक्तव्य को बल देता हुआ एक संवाद है 'अनित्य' में – "कौन लिखता है इतिहास? वही, जिसके पास सत्ता होती है और जिनके हाथों में सत्ता होती है उनके मूल्य दुहरे ही हुआ करते हैं।"[2]

उपर्युक्त दोनों ही कथन आज तक के इतिहास लेखन पर भी प्रश्न चिह्न लगाते हैं और साथ ही मृदुला गर्ग के दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करते हैं। भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन के सम्बन्ध में जो इतिहास लिखा गया वह बहुत ही विडम्बनापूर्ण स्थिति को दर्शाता है। यह अभिजनवादी इतिहास–दृष्टि गाँधीवादी आंदोलन को ही एक प्रकार से आज़ादी दिलाने का सम्पूर्ण श्रेय प्रदान करती है। जबकि वास्तविकता यह है कि आज़ादी के संघर्ष में एक ही वर्ग, सम्प्रदाय या विचारधारा सक्रिय नहीं थी बल्कि वो अनेक लोग और संगठन थे जिनकी इतिहास में पूर्ण उपेक्षा कर दी गई है। सन् 1885 ई॰ – 1947 ई॰ के काल को इतिहास–ग्रन्थों में कांग्रेस की स्थापना, उसके कार्य, गाँधीवादी आन्दोलन आदि शीर्षकों से अभिहित किया जाता है। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि कांग्रेस के कार्यों के समानान्तर बहुत बड़े पैमाने पर और भी कई आंदोलन चल रहे थे जिनमें से प्रमुख था – क्रांतिकारी आंदोलन। ये क्रांतिकारी अपनी भूमिका निभाने में गाँधीवादियों से कहीं आगे निकल गये। सरकारी (ब्रिटिश) हुकूमत के अन्याय और अत्याचारों को भी सर्वाधिक इसी वर्ग ने झेला।

भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुखदेव, राजगुरु तो कुछ ही नाम हैं, जो क्रांतिकारी वीरों के बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन लोगों के अतिरिक्त आज़ादी के आह्वान पर मिटने वाले ऐसे भी वीर थे जिन्हें काले पानी की घोर यंत्रणाओं को सहना पड़ा और जो एक लम्बे अरसे तक गुमनामी के अँधेरे में खोये रहे। हिमांशु जोशी ने अपनी पुस्तक में इन वीर सपूतों को प्रकाश में लाने का बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अपनी भूमिका में वे कहते हैं – "स्वतन्त्रता संग्राम का जो इतिहास अब तक लिखा गया, वह महत्त्वपूर्ण है, परन्तु वह उससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं, जो लिखा ही नहीं गया। जो आज़ादी के परवाने सिर पर कफन बाँधकर घर से निकल पड़े और फिर लौटे ही नहीं, उनकी सुधि कौन लेता? स्वतन्त्रता के पचास वर्ष बाद भी वे हमारे लिए आज वैसे ही अज्ञात, अपरिचित, उपेक्षित, विस्मृत हैं जैसे तब थे। ..... यह कैसी विडम्बना है कि आज कोई उनका नाम तक नहीं जानता, उनके ऐतिहासिक बलिदानों की बात तो दूर! देश को आज़ादी दिलाने का श्रेय एक ही विचारधारा या एक ही वर्ग या एक ही संघर्ष शैली को नहीं जाता, बल्कि उनका भी कम योगदान नहीं रहा जिन्हें इतिहास के पृष्ठों पर हमेशा–हमेशा के लिए हाशिए पर रख दिया गया है।"[3] हमारे परम्परागत इतिहास–लेखन की भयंकर त्रुटि यह रही कि वह आज़ादी के पचास साल बाद भी किताबों के जरिए बच्चों के कोमल मानस में भरता रहा –

दे दी हमें आज़ादी बिना खड्ग बिना ढाल ।
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल ।।

जबकि आज़ादी सिर्फ 'बिना खड्ग और ढाल' के ही नहीं मिल गई थी। न ही सारा कमाल साबरमती के संत का ही था। स्वतन्त्रता आंदोलन का लक्ष्य

पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना था, न कि आदर्श और सदाचार का पाठ पढ़ाना।'अनित्य' में मृदुला गर्ग ने इस बात को स्पष्ट किया है कि रामराज्य सिर्फ एक यूटोपिया था, जिसका वास्तविकता से कोई लेना–देना नहीं था। 'अहिंसा' का आदर्श, जिसने गाँधी जी के देवत्व का खूब डंका बजाया, की भावना लोगों के मन से पूर्णतः निकली नहीं, और न ही निकल सकती थी। पुलिस की लाठी खाकर अविजित जैसा सत्याग्रही भी बड़ी मुश्किल से अपने आप पर नियंत्रण रख पाता है जबकि उसकी आत्मा में प्रतिहिंसा का भाव उठने से रह नहीं पाता। सविनय अवज्ञा आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन का आह्वान भले ही गाँधी जी ने किया हो लेकिन ये आंदोलन अहिंसा से अछूते नहीं रहे। भगतसिंह का विचार था – "हिंसा का अर्थ है अन्याय के लिए किया गया बल प्रयोग, परन्तु क्रान्तिकारियों का तो यह उद्देश्य नहीं है, दूसरी ओर अहिंसा का जो आम अर्थ समझा जाता है, वह है आत्मिक शक्ति का सिद्धान्त... क्रांतिकारी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अपनी शारीरिक एवं नैतिक शक्ति दोनों के प्रयोग में विश्वास करता है, परन्तु नैतिक शक्ति का प्रयोग करने वाले शारीरिक बल प्रयोग को निषिद्ध मानते हैं। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि आप हिंसा चाहते हैं या अहिंसा बल्कि प्रश्न तो यह है कि आप अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए शारीरिक बल सहित नैतिक बल का प्रयोग करना चाहते हैं या केवल आत्मिक शक्ति का।"[4] भगतसिंह के विचारों से स्पष्ट है कि क्रांतिकारी आंदोलन अनैतिक साधनों में विश्वास नहीं करता था। यह ठीक है कि उन्होंने सशस्त्र क्रांति का समर्थन किया लेकिन उनके पवित्र उद्देश्य पर हम प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकते हैं। और उनकी वह आज़ादी सत्ता का हस्तांतरण कतई नहीं थी।

आज आज़ादी के पचास साल बाद भी स्थितियाँ वैसी की वैसी हैं।

पूंजीवाद और महाजनी सभ्यता का बोलबाला है। अंग्रेज चले गए लेकिन सत्ता अपने ही जैसे लोगों को हस्तांतरित कर गए। अंग्रेजों के स्थान पर हिन्दुस्तानी गद्दी पर जा बैठा लेकिन शोषण, आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, शिक्षा–पद्धति, भूख, बेरोजगारी को लेकर कुछ खास परिवर्तन नहीं हुए। भगतसिंह महज एक क्रांतिकारी ही नहीं अपितु चिंतक भी थे। उनकी यह आशंका निर्मूल नहीं थी कि "लार्ड रीडिंग या इर्विन की जगह तेगबहादुर या पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के आ जाने से कोई भारी फर्क न पड़ सकेगा।"[5] हुआ भी यही कि जो कांग्रेस अब तक ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लड़ रही थी, आज़ादी के बाद वह उसी राज का प्रतिरूप नजर आने लगी। सुमित सरकार लिखते हैं – "कांग्रेस की लड़ाई राज के खिलाफ रही किन्तु अब स्वयं कांग्रेस ही धीरे–धीरे राज बनती जा रही थी। बिना किसी बड़े परिवर्तन के ब्रिटिश राज की संपूर्ण नौकरशाही एवं सैन्य व्यवस्था, स्वर्गिक सिविल सेवा और अन्य सब कुछ को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया था; केवल गोरों का स्थान अब काले साहबों ने ले लिया था।[6]

'अनित्य' की कथा आज़ादी से मोहभंग की कथा है और यह मोहभंग सर्वप्रथम गाँधीजी का हुआ था। जब जवाहरलाल नेहरू स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री की हैसियत से शपथ ग्रहण कर रहे थे तो "ऐसे राष्ट्रपिता भी थे जिनका कहना था कि उनके पास देने के लिए कोई संदेश नहीं रह गया था और जिन्हें अपने जीवन के अंतिम कुछ महीनों में सांप्रदायिकता के विरुद्ध अकेले एक नैराश्यपूर्ण लड़ाई लड़नी पड़ी थी। सांप्रदायिक दंगे और देश का विभाजन राष्ट्रीय आंदोलन के आदर्शों की दृष्टि से सबसे बड़ी विफलताएँ थे।"[7] 'अनित्य' ऐसे ही मोहभंग से आया हुआ उपन्यास है। आज़ादी की लड़ाई की न्यूनताओं तथा गाँधी और भगतसिंह

के मौलिक दृष्टि–भेद का विश्लेषण करता हुआ यह उपन्यास इन्हीं प्रश्नों तथा स्थितियों की पड़ताल करता है। मूल्य–ह्रास की इस कथा से उपन्यास का पात्र अविजित पूर्णतः जुड़ा हुआ है और मृदुला गर्ग द्वारा वर्णित ऐतिहासिक परिस्थितियों से जूझता हुआ उनके कथ्य को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। संक्षेप में कहा जाए तो 'अनित्य' इतिहास को नये सिरे से देखने का प्रयास है। वे यह अध्ययन करना चाहती थीं कि "समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मानस पर दीर्घकालीन रूप से क्या प्रभाव पड़ता है और स्वतन्त्रता आने के बाद की हमारी अवसरवादी मानसिकता को गढ़ने में उनकी कितनी और क्या भूमिका रही है।"[8] इसीलिए यह उपन्यास स्वतन्त्रता 'आंदोलन से जुड़ी हुई घटनाओं को आधार बनाकर लिखा गया है। उस पृष्ठभूमि को लेकर लेखिका ने आज के समाज की दुविधाग्रस्त जड़ मानसिकता की पड़ताल की है। दूसरी बात जो इस उपन्यास से जुड़ी हुई है कि इस उपन्यास में इतिहास वहीं तक सीमित है जहाँ तक उसकी आवश्यकता है। ऐतिहासिकता का निर्वाह सम्पूर्ण उपन्यास में नहीं हुआ है। ऐतिहासिक तथ्य उपन्यास के पहले खण्ड 'दुविधा' तक ही सीमित हैं जबकि दूसरे खण्ड में उस अधूरी आज़ादी के प्रति आक्रोश है, तथा साथ ही समझौतावादी नीति की परिणति भी, जिससे अविजित अंत तक जूझता रहता है। यही विशिष्टता इसे अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों से सर्वथा भिन्न वर्ग में ला खड़ा करती है।

इस उपन्यास की सर्वप्रथम विशिष्टता तो यह है कि परम्परागत दृष्टि से इसे ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। उपन्यास की भूमिका में लेखिका ने खुद स्वीकारा है कि "पारंपरिक दृष्टि से 'अनित्य' ऐतिहासिक या राजनीतिक उपन्यास नहीं है। यानी इतिहास की घटनाएँ इसमें नाटक के दृश्य

की तरह नहीं घटतीं। पर इतिहास का घटनाक्रम, राजनीतिक सोच और सामाजिक बोध मेरे पात्रों के चेतना प्रवाह के प्रमुख अंग हैं। इससे इतिहास या राजनीति का महत्त्व कम नहीं होता, बढ़ जाता है। मैं समझती हूँ कि जब तक आँखों के सामने बन रहा इतिहास और राजनीतिक गतिविधियाँ हमारी चेतना का अंग नहीं बनतीं, भविष्य के निर्माण में उनकी कोई सार्थक भूमिका नहीं हो सकती।"[9] 'अनित्य' का इतिहास तथा राजनीतिक गतिविधियाँ पात्रों को अपने से अछूता ही नहीं रखतीं अपितु अपने प्रवाह में भी बहा ले जाती हैं। इतिहास में अविजित की भूमिका उसकी बेटी प्रभा को प्रतिक्रियास्वरूप भविष्य के निर्माण की प्रेरणा देती है। यद्यपि यह एक अलग प्रश्न है कि वह नक्सलवादी आंदोलनकारियों में शामिल हो जाती है और इसकी ऐसी परिणति उचित है अथवा नहीं।

अनलिखा इतिहास जानने की ललक लिए मृदुला गर्ग ने जिस उपन्यास की सृष्टि की उसके तंतु कोरी कल्पनाओं से बने हुए नहीं हैं अपितु तथ्यात्मक हैं। आज़ादी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है अपितु आज से केवल पचास साल पहले का है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात इस उपन्यास के बारे में यह है कि इसका इतिहास समकालीन है। आज़ादी में जिन अनेक लोगों ने अपनी भूमिका अदा की तथा अपनी आँखों से इतिहास बनते देखा वे स्वतन्त्रता के बाद भी जीवित थे। स्वयं मृदुला गर्ग के पिता ने आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लिया था। जाहिर सी बात है कि लेखिका इन स्वतन्त्रता सेनानियों से रू–ब–रू हुई होंगी तथा उनके किस्से सुने होंगे। उपन्यास की भूमिका में वे कहती हैं कि – "आज़ादी मिलने से पहले और उसके बाद वर्षों तक हमारे घर में भगतसिंह के क्रान्तिकारी आंदोलन और गाँधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे में रात–दिन कुछ इस तरह चर्चा रही कि

उम्र के साथ–साथ, दोनों मेरे निजी अनुभवों से अधिक, मेरी मानसिकता के अंग बन गए।"[10] यही कारण है कि लेखिका को आज़ादी की घटनाओं की बहुत ही सूक्ष्म जानकारी है, और वे अनेक महत्त्वपूर्ण नेताओं से सम्बन्धित प्रसंगों का वर्णन इतनी खूबी से करती हैं मानो स्वयं वह दृश्य देख रही हों और घटनाएँ बयान कर रही हों। 'अनित्य' में पृष्ठ-9 पर विजयलक्ष्मी पण्डित और मोतीलाल नेहरू से संबंधित प्रसंग का वर्णन उन्होंने बड़ी ही बेबाकी से किया है। साथ ही चंद्रशेखर आज़ाद को पुलिस द्वारा घेर लिए जाने के पीछे जवाहरलाल नेहरू की भूमिका के बारे में वर्णन करने में तथा शक की सुई उन पर घुमाने में लेखिका पीछे नहीं हटी हैं। इसीलिए डॉ॰ नामवर सिंह ने 'अनित्य' को इतिहास की 'सेकेन्डहैंड नॉलेज' से लिखा गया उपन्यास कहा है। मृदुला गर्ग अपने वक्तव्य में कहती हैं कि अश्वत्थामा के अलावा सभी को इतिहास की 'सेकेन्डहैंड नॉलेज' ही होती है। इसी संबंध में आलोचक आनंद प्रकाश का कहना है कि – "इतिहास को किसने देखा है? जब अतीत में कुछ हुआ, जब घटना–विशेष ने आकार ग्रहण किया तब आज का कौन व्यक्ति मौजूद था, जो कहता कि वह उस घटना का चश्मदीद गवाह है? फिर चश्मदीद गवाह ही कितना जानता है या जान सकता है किसी एक घटनाक्रम के बारे में? मसलन दूर न जाएँ, आज भी हमारे देश में हजारों लाखों लोग ऐसे हैं जिन्होंने विभाजन को अपनी आँखों के सामने घटित होते ही नहीं देखा है बल्कि जिन्होंने उसकी अनेक चीजों में हिस्सेदारी की है, लेकिन क्या हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि उन्होंने अपने माहौल की वारदातों को, उनके सत्य को समझा है और उस अनुभव–क्रम से गुजर कर इतनी योग्यता हासिल की है कि उन्हें इतिहास का साक्षी माना जा सके? यानी समकालीन इतिहास जैसी चीज होते हुए भी नहीं

होती। उसमें झूठ–सच का, मान्यता और तथ्य का ऐसा घाल–मेल होता है कि वह प्रायः गढ़ी हुई और निर्मित वस्तु जान पड़ती है।"[11]

यदि समकालीन इतिहास पर इतने प्रश्नचिह्न लग जाते हैं तब तो आज से दो–तीन हजार साल पहले के इतिहास के बारे में क्या कहा जाएगा जिसके कुछ ही प्रमाण हमारे पास उपस्थित हैं और जो समुचित भी नहीं हैं।

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की एक लम्बी परम्परा रही है। इन उपन्यासों में सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर ब्रिटिशकालीन भारत तक का चित्रण किया गया है। वृन्दावनलाल वर्मा, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल व हजारी प्रसाद द्विवेदी के नाम प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में गिने जाते हैं। राहुल सांकृत्यायन ने बुद्धकालीन सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक वातावरण को अपने उपन्यासों का आधार बनाया है तो वृन्दावनलाल वर्मा ने मुगलकालीन इतिहास को, रांगेयराघव ने ईसापूर्व मोहनजोदड़ो तथा सिन्धुघाटीकालीन इतिहास को तथा यशपाल ने बुद्धकालीन इतिहास के ब्राह्मण तथा बौद्ध–संघर्ष को अपने उपन्यासों के विषय के रूप में लिया है। ऐसा करके उन्होंने न केवल तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का चित्रण किया है बल्कि उसे समझने और व्याख्यायित करने का प्रयास भी किया है। इन उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक तथा काल्पनिक दोनों ही प्रकार के पात्रों द्वारा अपने अभिप्रेत की सिद्धि की है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने 1857 ई॰ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर ब्रिटिश भारत के कालखण्ड को भी अपने उपन्यासों का आधार बनाया। बहुत से ऐसे उपन्यास भी आए जिन्होंने देश–विभाजन की त्रासदी का वर्णन किया (तमस, झूठा–सच) लेकिन फिर भी 'अनित्य' अपने 'स्ट्रक्चर' तथा शैली की दृष्टि से अन्य उपन्यासों से भिन्न दिखाई देता है। यह उपन्यास समकालीन

राजनीतिक इतिहास से जुड़ा हुआ उपन्यास है। चूंकि यह स्वाधीनता आंदोलन और उससे जुड़े अनेक पहलुओं की पुनर्व्याख्या करता है अतः अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न प्रकार का है। इस उपन्यास में मृदुला गर्ग ने पिछले पचास सालों के पतनोन्मुख समाज की पड़ताल की है और स्वाधीनता संघर्ष के अनुत्तरित सवालों को जाँचा है। आज़ादी की लड़ाई में गाँधी और नेहरू की जो भूमिका रही है उस पर हमेशा से सवाल उठाए जाते रहे हैं। न सिर्फ भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी उनसे असंतुष्ट थे बल्कि भारत की जनता का एक बहुत बड़ा वर्ग भी उनके दर्शन को स्वीकार नहीं कर सका। 'हिप्पोक्रेसी' जो इन नेताओं का मूल गुण था, इस देश को निरंतर पतन की ओर ले जाता रहा। मृदुला गर्ग ने अपनी पूरी समझ और गहन विश्लेषण के द्वारा बहुत ही बेहतरीन ढंग से और खुलकर अपने अभिप्रेत को सिद्ध किया है। जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने कहा है कि 'अनित्य समकालीन इतिहास और राजनीति के संबंध में लेखिका की जानकारी और समझ का प्रतिनिधित्व करता है, एक ऐसी गहराई और बेबाकी का परिचय देता है जो समकालीन साहित्यिक कृतियों में दुर्लभ है।"[12]

उपन्यास की घटनाएं, कालखण्ड और स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में उठाए गए प्रश्न केवल लेखिका के निजी प्रश्न नहीं हैं बल्कि भारत की जनता के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। आज़ाद की शहादत से सम्बन्धित अफवाहें, गाँधी जी का सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लेना, स्वतन्त्रता आंदोलन का उद्देश्य – सदाचार या आज़ादी...? ऐसे मूलभूत मुद्दे हैं जिनकी तर्कसंगतता से कोई इंकार नहीं कर सकता है। 'अनित्य' भगतसिंह से प्रेरित उपन्यास है तो उपन्यास जगत में भी एक क्रान्तिकारी प्रयास को सिद्ध करता है। भगतसिंह के वक्तव्यों तथा द्वितीय

विश्वयुद्ध की घटनाओं का कलात्मक भाषा में प्रस्तुतीकरण उपन्यास की प्रमुख विशेषताएँ हैं। जाहिर सी बात है कि लेखिका ने क्रांतिकारी आंदोलन, गाँधी–नेहरू दर्शन, द्वितीय विश्वयुद्ध तथा समसामयिक परिस्थितियों का बहुत बारीकी से अध्ययन किया होगा तभी वे चर्चिल तक के भाषण को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर सकी हैं।

'अनित्य' का स्ट्रक्चर इतिहास और आख्यान के विशिष्ट सम्बन्ध को दर्शाता है। 'दुविधा' और 'प्रतिबोध' दोनों खण्ड अतीत और वर्तमान, तथ्य और वास्तविकता तथा इतिहास और उसकी परिणति को दर्शाते हैं। 'दुविधा' नामक खण्ड में अविजित से संबंधित घटनाओं को लिया गया है तथा उन प्रामाणिक और ऐतिहासिक घटनाओं के कालखण्ड में अविजित, काजल, चड्ढा, अनित्य जैसे पात्रों की स्थिति और मनोस्थिति दर्शाकर तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन किया गया है। जिस तरह की आज़ादी को स्वतन्त्रता सेनानियों ने 1947 ई॰ में देखा, उसे देखकर उन्हें निराशा ही हाथ लगी तथा वे सोचने लगे कि यथास्थितिवादी आज़ादी को बदलने के लिए क्या एक और लड़ाई छेड़नी होगी। इसी चिन्ता को हिमांशु जोशी ने अपनी पुस्तक में व्यक्त किया है – "यदि वे क्रान्तिकारी आज जीवित होते तो शायद अवश्य पूछते, पिछले इन पचास सालों में देश कहाँ पहुँचा है? भ्रष्टाचार किस हद तक हमने बढ़ाया है? जिन मूल्यों के लिए अपना बलिदान दिया था, उनका मोल आज किस रूप में चुकाया जा रहा है? दल–दल में डूबा देश अभी तक भी जागा क्यों नहीं...? आज़ादी की एक और लड़ाई क्या हमें अभी लड़नी है....।[13] जबकि 'प्रतिबोध' खण्ड में नई पीढ़ी – शुभा और प्रभा अपने–अपने तरीके से एक्शन में आ जाती हैं। प्रभा काजल का प्रतिरूप है और इस थोथी आज़ादी से लड़ने के लिए कमर कस लेती है। वह उस असंतुष्ट युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है जो वर्तमान से असंतुष्ट

है तथा नया इतिहास रचने के लिए एक ऐसा मार्ग चुन लेती है जिस पर अनेक प्रश्नचिह्न लगे हुए हैं। प्रभा नक्सलवादी समूह से जुड़ जाती है। हालाँकि मृदुला गर्ग के पात्रों की इस परिणति पर कई प्रश्न उठे हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि पूँजीवाद के नीचे दबे–कुचले लोगों का आक्रोश इस दिशा में आज भी प्रयुक्त किया जा रहा है। हालाँकि इस परिणति से देश की अखण्डता पर भी प्रश्न उठते हैं। इस प्रकार इतिहास का निर्वाह सम्पूर्ण उपन्यास में नहीं हुआ है। जो घटनाएँ फ्लैशबैक में हैं, वहीं इतिहास के साथ उनका सम्बन्ध दिखाई देता है, नहीं तो बाकी की कथा अविजित और उससे जुड़े पात्रों की कथा है। यह कथा है उसके अपराध बोध की और उसके परिणामस्वरूप् डिलीरियम की स्थिति तक पहुँचने की। 'दुविधा' अविजित का वर्तमान और उससे जुड़ा हुआ अतीत है। उसकी हालत 'दस कदम आगे दस कदम पीछे' जैसी है। अतीत बार–बार उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लेता है। उसका वर्तमान भी अतीत से अछूता नहीं रह पाया है, वह भी अपराधबोध से ग्रस्त है।

अविजित के अपराधबोध के कारण कई हैं – एक तो स्वतन्त्रता संग्राम में उसकी भूमिका और साथ ही श्यामा, संगीता और काजल के साथ बनाए गए सम्बन्धों में अपनी भूमिका का निर्वाह। अविजित अपने कल से संतुष्ट नहीं है और काजल बैनर्जी उसे वर्तमान से संतुष्ट नहीं रहने देती है। दूसरी बात यह है कि 'दुविधा' खण्ड में भले ही इतिहास फ्लैशबैक में हो लेकिन इतिहास की घटनाएँ घटती हैं, वर्तमान में अविजित तथा अनित्य (अविजित का अन्तर्मन) और अविजित तथा काजल के बीच उनकी न्यायसंगतता पर बहस होती है। न सिर्फ अविजित बल्कि उसके आदर्श गाँधी–नेहरू तक कटघरे में खड़े कर दिए जाते हैं। प्रभा और शुभा चल तो रही हैं लेकिन दोराहे पर खड़ी, मार्ग चयन करने की दुविधा में हैं।

'प्रतिबोध' में दोनों अपने-अपने मार्ग का चयन कर लेती हैं। कल तक अपने पिता की वीरता की कथाएँ सुनकर आह्लादित होने वाली प्रभा की प्रतिभा काजल बैनर्जी की शागिर्दी में आकर और भी निखर जाती है। वह खुलकर सामने आती है। अविजित को वह काजल का प्रतिरूप नजर आने लगती है। वह भयंकर विद्रोही हो गई है। बाढ़ आ जाने पर शुभा बाढ़–पीड़ितों की मदद करना चाहती है पर प्रभा को मदद से सख्त नफरत है – "ऐसी मदद गलत है.... जो देता है उसके मन में हिकारत होती है; जो लेता है उसके मन में नफरत।"

शुभा कहती है – "मदद गलत है ?"

"नहीं मदद करने का सामर्थ्य होना गलत है। एक समाज में रहने वाले लोग इस तरह क्यों बँटे कि एक वर्ग के पास इतना हो कि वह मदद करने की सामर्थ्य रखे और दूसरे के पास कुछ न हो कि उसे मदद की जरूरत पड़े।"[14] प्रभा को समाज के वर्ग–भेद के प्रति आक्रोश है। उसके दिमाग में ढेरों सवाल हैं, जिनके उत्तर उसे सिर्फ 'एक और क्रांति' में मिल सकते हैं। इस दूसरे खण्ड में आकर उसका और अविजित का सम्बन्ध भी शिथिल पड़ने लगता है। काजल तो कुछ प्रश्नों को अनुत्तरित छोड़ देती है क्योंकि उसे अविजित से प्रेम है और वह उसे कष्ट नहीं देना चाहती, लेकिन प्रभा उसे कटघरे में खड़ा करके तड़ातड़ सवालों की बौछार कर देती है। अविजित हमेशा की तरह निरुत्तर रह जाता है – "क्यों आई? हर साल बाढ़ क्यों आती है? बाढ़ रोकने के लिए क्या किया जा रहा है?" .....जितना पैसा हमारे नेता लोग विदेश यात्राओं और विदेशी वी.आई.पीज को चकाचौंध करने में लगाते हैं उतने में न जाने कितने गाँवों का भला हो सकता है।"[15]

इस प्रकार इतिहास में की गई भूलों का परिणाम और उससे उत्पन्न क्षोभ

को हम 'प्रतिबोध' खण्ड में देखते हैं। उपन्यास की शैली और इतिहास का निर्वाह इसे अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों से अलग सिद्ध करता है।

अनित्य की पृष्ठभूमि स्वतन्त्रता आंदोलन की है। इसमें 1927 ई॰ से 1947 ई॰ तक के आज़ादी के विभिन्न आंदोलनों को बैकग्राउण्ड में लिया गया है। अविजित जिस कालखण्ड में जी रहा है वह आज़ादी के बाद का सन् 1954 ई॰ का काल है। मृदुला गर्ग सन् 1980 के आसपास इस उपन्यास को लिख रही थीं। अपने उद्देश्य को यथार्थपरक तरीके से प्रस्तुत करने के लिए उन्हें एक कालखण्ड की आवश्यकता पड़ी। सन् 1954 ई॰ और 1980 ई॰ के भारत में उन्हें कुछ खास फर्क नजर नहीं आया और अठारह वर्ष बाद अब 'अनित्य' का चौथा संस्करण निकला तब भी हालात वैसे के वैसे थे। 'अनित्य' की भूमिका में मृदुला गर्ग कहती है – "उपन्यास अनित्य का पहला संस्करण 1980 में छपा था। उसके बाद उसके कई पुनर्मुद्रण हुए। अब 1988 में अठारह वर्ष बाद, जब उसके नवसंस्करण के प्रकाशन की बात हुई तो लगा, बतौर भूमिका भी कुछ जाना चाहिए। तब प्रकाशक के आदेश पर मैंने पुराने तमाम कागजात टटोले। उनमें मुझे अपना एक वक्तव्य मिला, जो 22 मार्च 1981 को धर्मयुग में छपा था। नाम था 'शहीद भगतसिंह और उपन्यास अनित्य'। 23 मार्च 1981 को भगतसिंह की फाँसी की अर्धशताब्दी थी। आज भारत के स्वाधीन गणतंत्र बनने की अर्धशताब्दी है। अपना वह लेख दुबारा पढ़ा तो पाया कि इन अठारह वर्षों में बदला–सुधरा कुछ नहीं बल्कि जो हालात तब थे, वही और पुख्ता हुए हैं।"[16]

अविजित बंसल जब अपने अतीत को याद करता है तो घटनाएँ सन् और तिथि सबका वर्णन करता चलता है। यह शैली उपन्यास को तथ्यपरक सिद्ध करती

है। इस उपन्यास के दिन और तिथि इतिहास से मेल खाते हैं। इस प्रकार उपन्यास को यथार्थपरक बनाने का पूरा–पूरा प्रयत्न किया गया है और यह प्रामाणिक भी सिद्ध हुआ है। उपन्यास के तथ्यपरक होने की जरूरत इसलिए भी पड़ी कि इसके पात्र इतिहास में जी रहे हैं। अविजित ने चन्द्रशेखर आज़ाद पर गोलियाँ चलते देखा है, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो आन्दोलन में गाँधी जी के साथ रहा है, विजयलक्ष्मी के साथ कालेज में भाषण भी दिए हैं। इतिहास में घटी हुई किसी भी घटना का असर उस पर पड़ता है। कालेज के दिनों में अविजित इलाहाबाद में 'हिन्दू बोर्डिंग हाउस' में रहता है लेकिन जब उसका विवाह हो जाता है तो उसे कलकत्ते में रहते दिखाया गया है। ये सारी घटनाएँ अतीत में घटती हैं। 'अनित्य' में पृष्ठ-49 पर इसकी पुष्टि होती है – "फिर भी स्वर्णा का जाना नहीं हो पाया था। नियति के चक्र में फंसकर लछमन को वहीं रह जाना पड़ा था कलकत्ते में। तो अविजित का घर ही क्या बुरा था?" आज़ादी के बाद की कहानी दिल्ली में घटती है। यह यमुना नदी के पुल के उल्लेख तथा मुकर्जी बाबू और अविजित के संवाद से स्पष्ट हो जाता है – "आजकल वे (काजल) दिल्ली में ही हैं। सीतादेवी कालेज में पढ़ाती हैं," अविजित ने कहा।

"अच्छा है" मुकर्जी बाबू बोले, "तब तो मुलाकात होती रहती होगी।"[17]

इस प्रकार घटनाएँ अलग–अलग स्थानों पर घटित होती हैं लेकिन स्थान परिवर्तन कब होता है यह पता नहीं चलता है। लेकिन ये सभी स्थान अलग–अलग सन् की कहानी कहते हैं। दिल्ली में अविजित को आज़ादी के बाद सन् 1954 में दिखाया गया है। इलाहाबाद की घटना सन् 1930–32 के आसपास की है, और कलकत्ते का घटनाक्रम 1942–43 का है जब भारत छोड़ो आंदोलन जारी था और

बंगाल के अकाल तथा ब्रिटिश सरकार की स्वयंभूमिध्वंस नीति के कारण 'लछमन' को 'स्वर्णा' के साथ अविजित के घर कलकत्ते में रह जाना पड़ा था।

इस तरह से पात्रों को ऐतिहासिक घटनाक्रम से जोड़कर दिखाना तथा स्थानादि का परिवर्तन उस युग की आपाधापी तथा उपन्यास की घटनाओं को ऐतिहासिक रंग देने के प्रयास को दर्शाता है।

जहाँ तक उपन्यास के पात्रों का प्रश्न है, तो उनके नाम ऐतिहासिक नहीं हैं, लेकिन इसमें घटने वाली राजनीतिक और ऐतिहासिक घटनाएं उनकी चेतना का अंग हैं। राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से 'अनित्य' के सभी पात्र बहुत ही जागरूक हैं, भले ही वह काजल बैनर्जी हो या प्रभा, अनित्य या अविजित। ऊपर की पंक्तियों में मैंने 'अनित्य' के पात्रों को काल्पनिक नहीं बताया है, केवल उनके नामों को ही काल्पनिक कहा है, क्योंकि दोनों स्थितियों में बहुत फर्क है। काजल जैसी क्रांतिकारी महिलाएँ, अविजित जैसे समझौतावादी पात्र और सिंघानिया जैसे पूंजीपति उस युग में भी थे और आंदोलन से अछूते नहीं रहे थे। वास्तव में ये पात्र ऐतिहासिक भले ही न हों परन्तु किसी न किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व जरूर कर रहे हैं।

अविजित निम्न मध्यम वर्ग से ताल्लुक रखता है। उसके पिता चाहते हैं कि वह आई.सी.एस. की परीक्षा में बैठे और अपने परिवार का बोझ सँभाले। किन्तु आज़ादी की लड़ाई में भाग लेने के मोह को वह दबा नहीं पाता है। वह राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेता है, भाषण भी देता है। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के स्टूडैंट्स यूनियन का सदस्य भी है; वह अहिंसात्मक आंदोलन में विश्वास रखता है और आज़ादी के सभी आंदोलनों में भाग लेता है। उसकी इन्हीं गतिविधियों के कारण उसे आई.

सी.एस. के साक्षात्कार में जाने से रोक दिया जाता है। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी और सुभाषचन्द्र बोस जैसे कई व्यक्तित्व इतिहास में मिलते हैं जिन्होंने सिविल सेवा परीक्षा में चयनित होकर भी देश–सेवा के लिए इस नौकरी को छोड़ दिया। अविजित ऐसे ही पात्रों का प्रतिनिधित्व कर रहा है। 'अनित्य' के पात्रों को ऐतिहासिक बनाने का जो प्रयत्न है, उसका एक उदाहरण देखिये –

"उस दिन मोतीलाल नेहरू के बचा लेने पर जब सही सलामत हॉस्टल लौटा था तो फाटक के बाहर सड़क पर ही काजल पागलों की तरह आकर उसके गले में झूल गई थी।"[18]

इसी तरह कई अन्य घटनाएँ हैं – जैसे आज़ाद की शहादत को अपनी आँखों से देखना तथा विदेशी कपड़ों की होली जलाना आदि उसे पर्याप्त ऐतिहासिक सिद्ध करते हैं।

उपन्यास में एक अन्य पात्रा है – काजल बैनर्जी। वह एक क्रान्तिकारी चरित्र है। उसके पति से उसके मतभेद वैचारिक आधार पर हैं। क्रांतिकारी आंदोलन, उसके विचारों तथा उद्देश्यों में काजल की गहरी आस्था है। उसके पति का कहना है – "तुम्हें भगतसिंह पर इतना मोह क्यों है? कांग्रेसी की पत्नी को यह शोभा नहीं देता।" इसके प्रत्युत्तर में काजल कहती है – "मोह मुझे भगतसिंह पर नहीं इतिहास पर है।"[19] काजल बैनर्जी का नाम इतिहास–सम्मत भले ही न हो किन्तु उन महिलाओं का प्रतिनिधित्व जरूर करता है जिन्होंने स्वतन्त्रता संघर्ष में हिस्सा लिया और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई – खासतौर से छात्राओं ने। विरोध प्रदर्शन में हिस्सा लेना, तीन साल के लिए भूमिगत हो जाना, खुफ़िया रेडियो चलाना आदि गतिविधियाँ उन्हें ऐतिहासिक पात्रों के काफी करीब सिद्ध करती हैं। बिपिनचन्द्र ने लिखा है "भारत

छोड़ो आन्दोलन में..... औरतों ने भी काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई – खास तौर से छात्राओं ने। अरुणा आसफ अली और सुचेता कृपलानी ने भूमिगत कार्रवाइयों के संगठन का काफी काम किया और उषा मेहता उसे छोटे से समूह की महत्त्वपूर्ण सदस्या थीं जो कांग्रेस रेडियो चलाता था।"[20]

काजल बैनर्जी का चरित्र प्रसिद्ध वकील आसफ अली (भगतसिंह के बचाव पक्ष के वकील) की पत्नी अरूणा आसफ अली से पर्याप्त मिलता है। 'अनित्य' के पृष्ठ 121 में जिस घटना का वर्णन है वह उनके जीवन में ऐसे ही घटी थी। सन् 1942 में वे भी इसी तरह अंग्रेजों से बचने के लिए छिपती फिरी थीं और एक अंग्रेज अफसर ने उनकी सहायता की थी। इसके अतिरिक्त उपन्यास की भूमिका में लेखिका ने स्वयं उसे भगतसिंह से प्रेरित पात्र बताया है जो महाजनी सभ्यता का खुलकर विरोध करती है। वह एक ऐसा चरित्र है जिसे आज़ादी के बाद के परिणामों के प्रति आक्रोश है साथ ही आजकल की शिक्षा पद्धति से भी वह असंतुष्ट है। वह इतिहास को नए नजरिए से पढ़ाना चाहती है। उसका विचार है कि भारत में राष्ट्रीयता के उदय में सिर्फ कांग्रेस का इतिहास ही नहीं बताया जाना चाहिए बल्कि उसमें क्रांतिकारियों का भी भरपूर योगदान रहा है। वह भगतसिंह के प्रगतिवादी दृष्टिकोण से विद्यार्थियों को परिचित कराना चाहती है। 'दुर्गा भाभी' जैसे ऐतिहासिक चरित्र जिन्होंने भगतसिंह के छिपने में मदद की थी ऐसे ही असंतोष से मृत्युपर्यन्त ग्रस्त रहे थे।

'अनित्य' के पात्र तत्कालीन परिस्थितियों को दिखाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। अविजित ने कांग्रेस में रहकर और तथाकथित अहिंसात्मक नीतियों का पालन करके सुविधाभोगी मार्ग चुन लिया। वह बहुत ही कड़वा सच है कि सच्ची

शहादत करने वाले उपेक्षित ही रह गए और जिन्होंने अपने योगदान का ढिंढोरा पीट दिया उन्होंने कुर्सी हथिया ली। आज़ादी में सच्ची शहादत देने वाले 'रिवॉल्यूशनरीज़' का कहीं नाम तक नहीं आता है। सत्ता कांग्रेस के हिस्से में आई, क्रांतिकारी मार्ग अपनाने वालों को पूछा तक नहीं गया। काजल अपने पति मुकर्जी बाबू के विषय में कहती है – "कांग्रेसी हैं। 1942 में माफी माँगकर जेल से छूट गए थे। आदमी तिकड़मबाज हैं.... आज़ादी मिलने पर लीडरों की चापलूसी की। मंत्री बन गए।"[21]

एक अन्य पात्र मिस्टर सिंघानिया भारत के पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता आंदोलन में अपने हितों की पूर्ति के लिए कांग्रेस का पूरा–पूरा समर्थन किया था। चड्ढा के अनुसार अविजित प्रसिद्ध उद्योगपति के मैनेजर और जज सिंघल के दामाद होने की हैसियत से शक के घेरे से बाहर है। उपन्यास में एक स्थान पर अविजित स्वयं कहता है – "एक वफादार हिन्दुस्तानी। साम्राज्य का ईमानदार मददगार। यह मेरी नहीं तमाम भारतीय उद्योग की बेइज्जती है, खुद सरकार की बेइज्जती है।"[22]

इसके अतिरिक्त अन्य चरित्र किसी न किसी प्रकार गाँधीवादी या क्रांतिकारी विचारधारा का समर्थन करते हैं। उनमें से कुछ भारत के पूंजीपति वर्ग में आते हैं तो कुछ मजदूर वर्ग के पात्र हैं – जैसे स्वर्णा और लछमन, जिन्होंने अंग्रेजों की अनीतियों का खामियाजा अपनी जमीन खोकर भुगता है। शुक्ल जी जैसे निष्क्रिय पात्र भी हैं जो यथास्थितिवादी हैं, कुछ भी करने में उनकी आस्था नहीं है। तो दूसरी ओर चड्ढा जैसा पात्र है, एक सच्चा देशभक्त, जो न तो सत्ता–सुख भोगता है और न ही स्वतन्त्रता सेनानियों को मिलने वाली सुविधाओं

का लाभ उठाता है। जेल में 'सी' श्रेणी की कैद भुगतने वाला चड्ढा बिना किसी इलाज के ही मर जाता है। चड्ढा नामक पात्र की पुष्टि इतिहास से भले ही न हो और अविजित से सम्बन्धित क्रांतिकारी दस्तावेज वाली घटना का प्रमाण भले ही न मिले लेकिन उस दौर में ऐसी घटनाएँ घटती रहती थीं। क्रांतिकारी आंदोलनकारियों द्वारा ऐसे कदम उठाना आम बात थी।

इस तरह स्थूल रूप में तो ये पात्र ऐतिहासिक सिद्ध नहीं होते हैं लेकिन मोतीलाल नेहरू, महात्मा सुंदरलाल, विजयलक्ष्मी पण्डित, गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, भगतसिंह, बिड़ला, चन्द्रशेखर आज़ाद के समकालीन दिखाए गए हैं। अतः पात्रों के नाम को छोड़ दिया जाए तो इन पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं की ऐतिहासिकता से इंकार भी नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इतिहास केवल किताबों में लिखा दस्तावेज ही नहीं होता है। ऐसा बहुत कुछ शेष रह जाता है जो किसी परिणाम के विषय में अपनी भूमिका के निर्धारण में उतना ही महत्त्वपूर्ण रहा हो, जितने अन्य तत्त्व रहे हैं।

'अनित्य' में फ्लैशबैक में जिन घटनाओं का वर्णन किया गया है वे पूर्ण ऐतिहासिक हैं। इतिहास की पुस्तकों से इनके दिन, तिथि, कार्यकलाप और भाषण तक मेल खाते हैं। इससे पता चलता है कि लेखिका ने इतिहास का अत्यन्त गहन अध्ययन किया होगा। न केवल उनका इतिहास–ज्ञान समृद्ध है अपितु इसके चिंतन और विश्लेषण में अपनी सोच को व्यक्त कर पाने में तथा युगीन आवश्यकता को समझ पाने में वे पूर्णतया सफल भी रही हैं। यह घटनाओं की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के विवेचन क्रम में स्पष्ट हो जाएगा।

'अनित्य' में जिस ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि की गई है वह यथार्थ

के बहुत अधिक निकट है – साइमन कमीशन का विरोध, भगतसिंह द्वारा असेम्बली में बम फेंका जाना, भगतसिंह सुखदेव और राजगुरु को फाँसी की सजा सुनाना, गाँधी–इर्विन वार्ता, सविनय अवज्ञा आंदोलन का स्थगन, नमक सत्याग्रह, चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत, यतीन्द्रनाथ की जेल में मृत्यु, गाँधी–नेहरू की भूमिका, साम्प्रदायिक निर्णय, भारत छोड़ो आन्दोलन और अन्ततः (अधूरी) स्वतन्त्रता प्राप्ति – ये सब ऐसी घटनाएँ हैं जिनकी ऐतिहासिकता स्वयंसिद्ध है। दूसरी बात इस आंदोलन के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोण की है। गाँधी जी की नीतियों और क्रांतिकारियों के प्रति उनके रवैये पर आज़ादी के आंदोलन के दौरान भी प्रश्नचिह्न लगते रहे थे और आज जबकि इतिहास को 'अधीन लोगों की दृष्टि'से देखने का दौर चल पड़ा है, तब ये सवाल और भी ज्यादा तीव्रता के साथ पूर्ववर्ती इतिहास–लेखन और नेताओं द्वारा उसमें निभाई गई भूमिका पर उठाए जा रहे हैं। यह उपन्यास उन्हीं प्रश्नचिह्नों की एक कड़ी है।

'अनित्य' में पृष्ठ-48 पर लछमन और स्वर्णा के कलकत्ता में रह जाने के कारणों का वर्णन है। 1942 ई॰ के आरम्भ में उसकी जमीन को अंग्रेजों ने तहस–नहस कर डाला था तथा रसद, गाय–बैल छीन लिए थे, जिससे वे हमलावर जापानी फौजों के हाथ न लगें। 'लछमन का गाँव उड़ीसा के तटवर्ती इलाके के उन सैंकड़ों गाँवों में से एक था जिनकी खड़ी फसलें ब्रिटिश सरकार ने जला डाली थीं।' बिपिनचन्द्र ने अपने इतिहास–ग्रन्थ में इसका वर्णन किया है – "युद्ध के कारण बढ़ती कीमतों और जरूरी वस्तुओं के अभाव से जनसाधारण में बेहद असंतोष था। बंगाल और उड़ीसा की नावों को जापानियों द्वारा उनके संभावित इस्तेमाल को रोकने के लिए सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था, जिससे लोगों को दिक्कत हो रही

थी। सिंचाई की नहरों का कहीं जापानी जल परिवहन के लिए इस्तेमाल न कर लें, यह सोच कर नहरों का पानी बहा दिया गया जिससे खेत सूखने लगे थे। मकानों और मोटरगाड़ियों पर भी सेना ने कब्जा कर लिया था। जनता खुशी–खुशी युद्ध में शामिल होती तो उसे यह सब नहीं अखरता लेकिन यहाँ तो सब कुछ उस पर लादा जा रहा था।"[23] इस तरह स्वयंभूमिध्वंस नीति का असर उन पर पड़ा जिनकी जमीन थी। अंग्रेजों की अपनी जमीन नहीं थी जो उन्हें जनता की फिक्र होती। उपन्यास में इस नीति का विश्लेषण भी है – "जो भूमि उनकी नहीं है जिसकी रक्षा करने का उनका कोई इरादा नहीं है, उसे ध्वंस करने में इतना निपुण कौशल। और वाकई जिसकी जमीन वह है, उन्हें हक नहीं है कि उसकी हिफाजत कर सकें।"[24]

द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय सैनिकों को आज़ादी का लालच देकर युद्ध में झोंक दिया गया था। वे ब्रिटेन की जीत के लिए लड़ रहे थे, भारत के लिए नहीं। अंग्रेजों की नीतियों से सन् 1943 में बंगाल का भीषण अकाल पड़ा, जिसका वर्णन स्वर्णा पृष्ठ–64 पर करती है। यशपाल व ग्रोवर ने अपनी पुस्तक में लिखा है – "1942–43 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा, जिसके फलस्वरूप सहस्रों लोग मृत्यु की शैया में सो गये..... इसमें दैवयोग के स्थान पर मानव अधिक उत्तरदायी था। राहत कार्य देर से आरम्भ हुए और अपर्याप्त थे, दूसरे युद्ध का प्रचार और युद्ध व्यय के कारण भी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। केन्द्रीय सरकार ने इसमें प्रांतीय सरकार की अधिक सहायता नहीं की और धन की कमी के कारण राहत कार्य सीमित रहे।"[25]

सुमित सरकार ने बंगाल के अकाल के विषय में लिखा है – "अंग्रेज

स्वदेश में कठोर समतामूलक खाद्यवितरण की अत्यन्त सक्षम युद्धकालीन अर्थव्यवस्था चला रहे थे परन्तु अपने उपनिवेशों में फैली हुई कालाबाजारी और भोज्यसामग्री की अंधाधुन्ध मुनाफाखोरी को रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं कर रहे थे, जिसका सीधा परिणाम 1943 में बंगाल का भयंकर अकाल था। खाद्यान्नों की कीमतों के बढ़ने के साथ ही उनकी कमी और देश में मित्र देशों की सेनाओं के विशाल जमाव को देखते हुए आम जनता की यह आशंका निमूल नहीं थी कि देश के खाद्यान्न भंडार को सेना चट कर रही थी।"[26]

'अनित्य' उपन्यास में पृष्ठ-50 पर 1940 ई॰ में चर्चिल के ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बनने और ब्रिटिश संसद में दिए गए उसके भाषण का उल्लेख है जो 'चर्चिल द सेकेन्ड वर्ड वार भाग–2 पृष्ठ 104' में संग्रहित है। "10 मई 1940 को श्री विंस्टन चर्चिल इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री हो गए।"[27]

इसी ग्रंथ में 4 जून 1940 को 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में चर्चिल द्वारा दिए गए भाषण का वर्णन 'अनित्य' से हू–ब–हू मिलता है, जिसमें केवल हिन्दी और उर्दू के शब्दों का हेर–फेर है – "आप पूछते हैं हमारा लक्ष्य क्या है? मैं केवल एक शब्द में ही जवाब दे सकता हूँ; विजय – सभी कीमतों पर विजय, आतंक के बावजूद विजय, विजय चाहे मार्ग कितना ही लम्बा और कठिन क्यों न हो क्योंकि विजय के बिना हमारी विजय नहीं।"[28]

'अनित्य' में पृष्ठ–51 पर यूरोप की घटनाओं का वर्णन है। हिटलर, मुसोलिनी और तोजो (जापान का प्रधानमंत्री) को तानाशाह की उपमा दी गई लेकिन ब्रिटेन और फ्रांस ने भी अपनी हितपर्ति के लिए कमजोर देशों का भरपूर फायदा

गया है। विश्व की ये महत्त्वपूर्ण घटनाएँ तथ्यात्मक और पूर्णरूपेण प्रामाणिक हैं। सी.डी.एम. केटलबी लिखते हैं – "यूरोप में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ही दो ऐसे देश थे जिन्हें यूरोप में शान्ति संतुलन बनाए रखने की सबसे अधिक चिन्ता थी, किन्तु ये दोनों देश धैर्यपूर्वक चुप रहते आए और उन्होंने जर्मनी के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया। किन्तु इन्हीं दिनों जर्मनी ने राष्ट्रसंघ छोड़ा, जबर्दस्ती सैनिक भर्ती आरम्भ की, राइनलैण्ड में पुनः सैनिक चौकियाँ स्थापित कर लीं, लोकार्नो संधि को त्याग दिया, समझौते के विरुद्ध स्पेन के गृहयुद्ध में हस्तक्षेप किया, एक सुसज्जित सेना खड़ी कर ली, आस्ट्रिया पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया और अंत में चेकोस्लोवाकिया की स्वाधीनता का भी अपहरण कर लिया। इंग्लैण्ड ने सहायता नहीं की। इंग्लैण्ड और फ्रांस चाहते थे कि जर्मनी का पुनर्निर्माण का कार्य पूरा हो जाए, इसीलिए वे चुप रहे। सबसे ज्यादा चिन्ता थी कि किसी भी कीमत पर युद्ध न छिड़े.... 1 सितम्बर को जर्मनी द्वारा पौलेण्ड पर आक्रमण कर दिया गया।"[29]

'अनित्य' में पृष्ठ 55 पर काजल, अविजित और अनित्य के मध्य संवाद हैं जिसमें विदेशी कपड़ों की होली जलाए जाने के कार्यक्रम का वर्णन है, और समय बताया गया है..... मार्च 1929। मृदुला गर्ग ने यद्यपि इस की आलोचना की है और ऐसे कार्यक्रमों को थोथा और आडम्बरयुक्त बताया है लेकिन इससे उस घटना की ऐतिहासिकता कम नहीं होती –

"1929 के पहले की यात्राओं में जहाँ गाँधी जी रचनात्मक कार्यक्रमों पर जोर देते आ रहे थे जैसे खादी, हिन्दू–मुस्लिम एकता तथा छुआछूत का उन्मूलन, लेकिन अब गाँधीजी ने जनता को सीधी राजनीतिक कार्रवाई के लिए तैयार करना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए सिंध में उन्होंने नौजवानों से अग्निपरीक्षा के

लिए तैयार रहने के लिए कहा और उन्हीं के कहने पर जनता द्वारा विदेशी वस्त्रों की होली जलाने तथा बहिष्कार का आक्रामक कार्यक्रम बनाने के लिए कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने विदेशी कपड़ा बहिष्कार समिति का गठन किया।... कलकत्ता में 4 मार्च 1929 को हजारों की भीड़ के समक्ष एक सार्वजनिक पार्क में विदेशी कपड़ों में आग लगाकर विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का श्रीगणेश किया गया।"[30]

जेल में अविजित को अपने ससुर जज सिंघल तथा बिड़ला जी के कारण 'ए' क्लास मिल जाती है और प्रकाशक अवधनारायण को 'सी' क्लास में जेल काटनी पड़ती है। ये सभी घटनाएँ उस समय के भेदभाव को दिखाती हैं। जेलों में ए, बी, सी श्रेणी क्रांतिकारियों के प्रयत्नों का फल था। उन्होंने जेल की यातनाएँ सहकर जो अनशन किया था उसी के परिणामस्वरूप कैदियों की तीन श्रेणियाँ बन गई थीं। लेकिन यह श्रेणी विभाजन समाज के वर्ग–विभेद के आधार पर किया गया था और क्रांतिकारियों को 'सी' क्लास में जाना पड़ा। बिपिन चन्द्र ने अपनी पुस्तक में इस घटना को विस्तार से बताया है – "जेलों में क्रांतिकारियों के लंबे अनशन से भी भारतीय जनता बहुत क्षुब्ध और उद्वेलित थी। ये क्रांतिकारी जेल की अमानवीय दशाओं में सुधार के लिए अनशन कर रहे थे। इन लोगों की यह भी माँग थी कि उन्हें राजनीतिक बंदी माना जाए, अपराधी नहीं। इन हड़ताली क्रांतिकारी बंदियों के साथ पूरे देश में इनके प्रति समर्थन की एक लहर आ गई थी। अनशन के 64वें दिन 13 सितम्बर को जतीनदास की मृत्यु हो गई।"[31] स्पष्ट है कि जेल में राजनैतिक बंदियों (क्रांतिकारियों) को अमानवीय दशा में रखा जाता था जबकि गाँधी जी और नेहरू ने शायद ही कभी ऐसी परिस्थितियों को झेला हो। ये घटनाएँ लेखिका के, स्वतन्त्रता आंदोलन की न्यूनताओं के प्रति दृष्टिकोण को तो उजागर करती ही

हैं साथ ही उस समय की स्थितियों की यथार्थपरकता पर भी प्रकाश डालती हैं। क्रांतिकारियों पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि वे असफल इसलिए हुए क्योंकि उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था। जबकि वस्तुस्थिति यह थी कि ये लोग कभी–कभी गाँधी और नेहरू से भी ज्यादा लोकप्रियता अर्जित कर लेते थे। इन्हें आम जनता का सहयोग भी बराबर मिलता रहा। भूमिगत कार्रवाइयों में संलग्न लोगों को आम जनता छिपने की जगह देने में मदद करती थी और व्यापारी वर्ग धन से उनकी सहायता करते थे। बिपिनचन्द्र लिखते हैं – "छात्र खबर और पर्चे ले जाने का काम करते थे। पायलट और रेल ड्राइवर बम तथा अन्य सामान इधर से उधर पहुँचाते थे। सरकारी अधिकारी और पुलिस वाले तक गिरफ्तारियों की अग्रिम सूची दे दिया करते थे।"[32] प्रसिद्ध आधुनिक इतिहासकार सुमित सरकार ने भी अपनी पुस्तक में क्रांतिकारियों की लोकप्रियता का उल्लेख किया है – "हिंसप्रस के वीरों और शहीदों ने अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त की। जब सितम्बर 1929 में राजनैतिक कैदियों की हैसियत में सुधार के लिए की गई भूख–हड़ताल के चौंसठवें दिन जतीनदास की मृत्यु हो गई तो कलकत्ता में उनकी अर्थी के पीछे दो मील लंबा जुलूस चल रहा था। बाद में जवाहरलाल ने अपनी आत्मकथा में लिखा था कि किस प्रकार पंजाब और उत्तरी भारत में भगतसिंह अचानक ही आश्चर्यजनक रूप से लोकप्रिय हो गए। गुप्तचर ब्यूरो के गुप्त विवरण 'टेरेरिज्म इन इण्डिया (1927–36)' में तो यहाँ तक कहा गया था कि "कुछ समय के लिए तो उन्होंने इस समय के अग्रणी राजनीतिक व्यक्तित्व के रूप में मि॰ गाँधी को भी मात दे दी थी।"[33]

'अनित्य' में अंग्रेज मार्शल क्रांतिकारियों के लिए आदरसूचक शब्द का प्रयोग करता है। वह उन्हें 'रिवॉल्यूशनरीज' नाम से सम्बोधित करता है क्रिमिनल

या टेरेरिस्ट नहीं। अविजित नोट करता है कि क्रांतिकारी शब्द का इस्तेमाल मार्शल बेहद शालीनता से करता है, उसमें हिकारत या व्यंग्य का पुट नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि ब्रिटिश सरकार भी क्रांतिकारियों की भूमिका को सम्मान की दृष्टि से देखती थी।

इसके अतिरिक्त कराची कांग्रेस में गाँधीजी का काले झण्डों से स्वागत होने की घटना की ऐतिहासिकता की पुष्टि हम पहले ही कर चुके हैं। 'अनित्य' में एक स्थान पर काजल कहती है – "भूल गए, गाँधीजी ने कराची कांग्रेस में काले झण्डों से स्वागत होने पर क्या कहा था – इतनी जनजाग्रति मैं दस वर्षों में नहीं ला पाया जितनी भगतसिंह को फाँसी लगने से पैदा हो गई।"[34] इस विषय में बिपिनचंद्र लिखते हैं – "गाँधीजी को अपनी कराची यात्रा के दौरान रास्ते पर कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। उनके खिलाफ प्रदर्शन किये गए। काले झण्डे दिखाए गए।"[35]

इसके अतिरिक्त लार्ड इर्विन से समझौते की बातचीत के दौरान आंदोलन बंद करना (पृष्ठ–68, 'अनित्य'), 5 मार्च 1931 को गाँधी इर्विन समझौता (पृष्ठ–70, 'अनित्य'), 8 अप्रैल 1929 को असेम्बली पर बम फेंकना तथा साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध गाँधीजी का अनशन (पृष्ठ–129) तथा 23 मार्च 1931 को भगतसिंह को फाँसी (पृष्ठ–201) ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। इतिहास ग्रन्थों में इनका विस्तार से वर्णन मिलता है। इन घटनाओं से उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण तैयार होता है तथा लेखिका के दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए ठोस जमीन भी तैयार होती है। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त ने इसके विषय में ठीक ही कहा था – "राष्ट्रीय आंदोलन और उसके बाद नक्सलवाद के साथ पिरोकर जो कहानी कही गई है वह बहुत दिलचस्प है, साथ ही जेनुइन भी।"[36]

'अनित्य' में मृदुला गर्ग ने स्वाधीनता आंदोलन के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। अपने कथ्य को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने एक विशिष्ट कालखण्ड और विशिष्ट घटनाओं को चुना। इन घटनाओं का चयन उनकी इतिहास–दृष्टि को व्यक्त करता है। यह उपन्यास स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान चलने वाले गाँधीवादी और क्रान्तिकारी दोनों ही रूपों की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। साफ तौर पर जाहिर है कि लेखिका की सहानुभूति भगतसिंह के साथ है। उपन्यास में गाँधी के दर्शन के औचित्य पर प्रश्न उठाए गए हैं और क्रांतिकारी आंदोलनकारियों के वास्तविक उद्देश्यों को, उनके घोषणापत्रों और वक्तव्यों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। इसकी प्रेरणा उन्हें न सिर्फ भगतसिंह के व्यक्तित्व से मिली अपितु आए दिन घर में होती रही आज़ादी की चर्चा से भी मिली। उन्हीं के शब्दों में – "हमारे घर में आए दिन, एक चर्चा चल निकलती थी, क्या ब्रिटिश राज से आज़ादी, वाकई आज़ादी थी? या महज सत्ता हस्तांतरण? क्या अहिंसा का नाम जपकर सचमुच हिन्दुस्तानी लोग हिंसा का त्याग कर पाए थे? या वह परत–दर–परत भीतर तक जमती चली गयी थी, ज्वालामुखी में सोए लावे की तरह, कभी भी फूट पड़ने के लिए? पाँच साल की उम्र से यह सुनते–सुनते हुआ यह कि सामने रचा जा रहा इतिहास और उसका गैर ईमानदार लिखित रूप, दोनों मेरी अनुभूति के हिस्से बन गए। और अंततः 40 की उम्र पर पहुँचकर, अनित्य लिखवा ले गए। छपा वह 1980 में।"[37] आगे जाकर वे लिखती हैं कि, "1975 में जब आपात स्थिति लागू की गई तो बहुतों को लगा, फिर से आज़ादी छिन गई, पर ऐसे भी लोग थे, मेरे जैसे, जो महसूस करते रहे थे कि वास्तव में, सही मायनों में, हम कभी आज़ाद हुए ही नहीं थे। हमारा मानस पराधीन बना रहा था और पराधीन

मानस में केन्द्रित सत्ता ने व्यक्ति–पूजा के जहर के साथ मिलकर, जनसाधारण को स्वतन्त्र–चिंतन और कर्म करने का अवसर ही नहीं दिया था। अपने ही देश में आधे से ज्यादा आबादी उपनिवेश की तरह जी रही थी; अशिक्षित, बेरोजगार (वाजिब आय न अर्जित करने के अर्थ में) और प्राथमिक चिकित्सा से महरूम तन और मन से अस्वस्थ इसीलिए आपातस्थिति हटने के बाद भी हर क्षेत्र में तानाशाही और भ्रष्टाचार कायम रहे।"[38]

'अनित्य' के बारे में यह कहा जाता है कि इसमें इतिहास की पुनर्व्याख्या की गई है और जो इसके अध्ययन से भी स्पष्ट है। इतिहास–लेखन के साथ एक बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि यह सत्ता–पक्ष के अधीन होता है। भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष के इतिहास को पहले अंग्रेजों ने और फिर स्वतन्त्र भारत की कांग्रेस सरकार ने अपने ढंग से तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया। जिन्होंने सच्ची शहादत दी वे गुमनामी के अँधेरे में खो गए और अवसरवादी लोग स्वाधीनता–सेनानियों को दी जाने वाली सुविधाओं का लाभ उठाने लगे। ('अनित्य' में ऐसे ही लोगों पर व्यंग्य है कि पुलिस की एक लाठी खाई और आ गए शहीदों की फेहरिस्त में' – 'शहादत इतनी सस्ती नहीं होनी चाहिए') लोगों को सरकार और उसके विरुद्ध अभिव्यक्ति का अवसर ही नहीं मिला, गाँधी–नेहरू को महिमामंडित किया जाता रहा। उनकी कमियों तथा गलत नीतियों की आलोचना को प्रकाश में नहीं आने दिया गया। अभिव्यक्ति पर अंकुश की इसी पीड़ा को 'अनित्य' की एक पात्रा काजल बैनर्जी व्यक्त करती हैं। वह क्रांतिकारी विचारों की महिला है जिसने अपने जमीर को मरने नहीं दिया। आज़ादी के बाद उसे न सत्ता की चाह है और न ही सत्तालोलुप पति के साथ की। वह कालेज में इतिहास पढ़ाती है – "जानते तो हो मैं इतिहास पढ़ाती हूँ।

तीन कालेजों से सिर्फ इसीलिए इस्तीफा देना पड़ा है कि मेरा पढ़ाया इतिहास पाठ्यक्रम की पुस्तकों से मेल नहीं खाता। अपने बच्चों को अब भी हम वहीं इतिहास पढ़ाते हैं जो अंग्रेजों ने हमारे लिए लिखा था। हमने लिखा नहीं... लिखा तो छपा नहीं। छपा तो पढ़ा नहीं गया, पढ़ाया कैसे जाता मैंने ब्रिटिश शासन काल पर दो किताबें लिखीं, छपी भी पर मेरे सिवा शायद किसी ने पढ़ी हों। इससे तो 1947 के पहले लिखती तो अच्छा रहता। मुखालफत करने को ही लोग उन्हें पढ़ डालते पर अब...."[39]

काजल का व्यंग्य एकदम सही है। आज़ादी से पहले लोगों में रोष के कारण ही सही, पर कुछ कर गुजरने का जोश था। विरोधस्वरूप जनता बड़े से बड़े कदम उठा लेती थी। सन् 1954 के दौर की कथा को यह उपन्यास कहता है। उस समय भारत में कांग्रेस का शासन था, काजल का लिखा इतिहास कैसे छपता। आज का दौर कुछ अलग है जब अनेक क्रांतिकारी पत्र और दस्तावेज छप कर आ रहे हैं। आज से पैंतालिस साल पहले के दौर को बयान करती हुई काजल स्वीकारती है कि अतीत की कुड़वाहट को वह चीनी मिलाकर गले से उतारने लायक नहीं बनाती।" यही कारण है कि उसे एक के बाद एक कालेजों से इस्तीफा देना पड़ता है। मृदुला गर्ग का मानना है कि – "जब एक तानाशाह किसी समाज या देश पर एकछत्र आधिपत्य जमाना चाहता है तो यही करता है; उसका इतिहास विकृत कर देता है; उसके स्मृतिचिह्नों को मिटा देता है। इतिहास में आम आदमी की भागीदारी को नगण्य साबित कर देता है, नेताओं को बागियों की संज्ञा देता है, उनमें से कुछ को चुनकर नायकों का दर्जा दे देता है, उन्हें, जो उसके पक्ष में जाते हैं; उसकी तानाशाही को उदार और लोकतांत्रिक साबित करते हैं। यही हमारे साथ हुआ।[40]

इतिहास के साथ खिलवाड़ की पुष्टि वीर सावरकार की घटना से भी हो जाती है। अंग्रेजों ने सन् 1857 के संघर्ष को इस तरह से प्रस्तुत किया कि उसे विद्रोह की संज्ञा दी गई लेकिन सावरकर ने 'इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ' (1907–1908, लंदन) की रचना करके न सिर्फ क्रांतिकारियों बल्कि भारतीयों के लिए एक प्रेरणास्रोत ग्रन्थ ग्रन्थ तैयार किया। किसी लेखक ने सच ही कहा है कि 'भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन का प्रश्न अंग्रेजों की स्वार्थ–बुद्धि एवं इतिहास के प्रति तटस्थता के अभाव के कारण उत्पन्न हुआ है। भारतीय इतिहास ही नहीं, विश्व के सभी देशों में इतिहास ज्ञान के प्रति ऐसी ही अराजकता रही।' मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यास 'अनित्य' का कथ्य इसलिए चुना था क्योंकि "किशोरावस्था से ही मैं भारत में अंग्रेजी राज की स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयासों के लिखित इतिहास से असंतुष्ट रही थी।"[41] और इसी के प्रतिक्रियास्वरूप उन्होंने जो ग्रन्थ रचा उसमें स्वतन्त्रता के बाद की परिस्थितियों के लिए गाँधी की अव्यावहारिक नीतियों और क्रांतिकारियों के प्रति अपनायी गई अनीतियों पर प्रश्न उठाए। मगर ये प्रश्न निराधार नहीं हैं। भगतसिंह के पास एक व्यापक कार्यक्रम था जबकि गाँधीजी आर्थिक अनुकंपा की बात करते थे। राजनीतिक घटनाक्रम में उनकी भूमिका की समीक्षा की जाए तो उन्होंने आज़ादी से ज्यादा सदाचार और अहिंसा को महत्त्व दिया। उसमें भी वे सफल नहीं हो पाए क्योंकि सन् 1947 में लोगों की भावनाओं का जो वीभत्स रूप देखा गया वह उनकी नीतियों की असफलताओं का प्रमाण है।

भगतसिंह की आशंका निर्मूल नहीं थी कि 'लार्ड रीडिंग या इर्विन की जगह तेगबहादुर या पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के आ जाने से कोई भारी फर्क न पड़ सकेगा, और फर्क पड़ा भी नहीं। इतिहास–ग्रन्थों तथा सत्ताधारियों की कोशिशों

ने एक पक्ष को ही आज़ादी का सारा श्रेय दे दिया। लेकिन किसी के असफल हो जाने ही से उनका महत्त्व समाप्त नहीं हो जाता है। सन् 1857 ई॰ का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम भले ही सफल न हो सका लेकिन लोगों के दिलों में एक चिंगारी जरूर छोड़ गया था। क्रांतिकारी आंदोलनकारियों की असफलताओं के प्रमुख कारणों में ब्रिटिश सरकार का दमन, तथा ब्रिटिश सरकार का सत्याग्रहियों से सहयोग था। सर्वविदित है कि शायद ही किसी सत्याग्रही की जेब की अमानवीय यंत्रणाओं से गुजरना पड़ा। 'भगतसिंह की फाँसी' सच नहीं बन पाती यदि गाँधी अंग्रेजों पर दबाव डालते परन्तु समझौते की शर्तों में कहीं भी उसका उल्लेख तक नहीं है। यहाँ तक कि राजनैतिक बंदियों की रिहाई के मसले पर हिंसक कार्रवाई में शरीक बंदियों को शामिल नहीं किया गया था। इस प्रकार आज़ादी की लड़ाई लड़ने वालों के प्रति भेदभाव की नीति बरतने वालों को 'हीरो' सिद्ध कर दिया गया और 'अहिंसा' के मसले को लेकर उनका पक्ष लिया जाता रहा। जबकि आज ऐसे अनेक तथ्य और दस्तावेज जुटा लिए गए हैं जिनसे सिद्ध हो जाता है कि गाँधी जी भी पूर्णतः अहिंसा को समर्पित नहीं थे। समयानुसार वे इसकी परिभाषा ही बदल देते थे। जब–जब कोई आंदोलन सफलता के करीब पहुँचा हुआ नज़र आता, वे इसको हिंसा–अहिंसा के प्रश्न पर स्थगित कर देते थे। हंसराज रहबर ने इसी प्रसंग में अपनी पुस्तक में गाँधी तथा उनकी नीतियों को आड़े हाथों लिया है–

"गाँधी इर्विन समझौते द्वारा आंदोलन स्थगित कर दिया गया। कांग्रेस ने दूसरे गोलमेज सम्मेलन में शामिल होना मंजूर कर लिया और सरकार ने वे सब कैदी छोड़ दिए जिन पर हिंसक कार्रवाई का आरोप नहीं था। भगतसिंह और उनके दूसरे क्रांतिकारी साथियों को जिन्होंने देश की राष्ट्रीय चेतना को जगाने में जबरदस्त

भूमिका अदा की थी, फाँसी पर लटकने और जेलों में सड़ने के लिए छोड़ दिया गया। क्योंकि उनकी पैरवी करना गाँधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ता था। लेकिन उन गढ़वाली फौजियों ने तो जिन्होंने चंद्रसिंह के नेतृत्व में अपने निःशस्त्र पठान भाइयों पर गोली चलाने से इंकार किया था, न सिर्फ निस्वार्थ–देशभक्ति का सबूत दिया था बल्कि गाँधीजी के सिद्धांत को भी ऊँचा उठाया था। उनकी भी पैरवी नहीं की गई, उन्हें भी जेल में सड़ने के लिए छोड़ दिया गया।"[42]

उपर्युक्त घटना अप्रैल 1930 की है जब पेशावर में निहत्थे लोग एक साम्राज्यवाद विरोधी प्रदर्शन कर रहे थे। ब्रिटिश अफसरों ने इस जुलूस पर गोली चलाने का आदेश दिया। गढ़वाली सैनिकों ने अद्‌भुत साहस का परिचय देते हुए और कोर्ट मार्शल, मौत की सजा की परवाह न करते हुए आदेश का पालन करने से इंकार कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने इन्हें कड़ी सजाएँ सुनाईं। इस घटना के विषय में गाँधीजी का कहना था कि – "गढ़वाली सिपाहियों ने जानबूझकर आदेश का पालन नहीं किया और ऐसा करके उन्होंने भयंकर रूप से अनुशासन तोड़ने का अपराध किया है। क्योंकि उन्होंने अपने अफसर के आदेशों का पालन करने की शपथ ले रखी थी अतः उन्हें रिहा करने के लिए मैं सरकार से नहीं कह सकता।"[43]

गाँधीजी को अपने देश के निहत्थे लोगों पर गोली न चलाने का काम इतना बड़ा अपराध लगा कि उन्होंने उन्हें (सिपाहियों को) रिहा करने के एक माँगपत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। उपर्युक्त घटना गाँधीजी की नीतियों और आदर्शों के विषय में किसी भी बुद्धिजीवी को सोचने पर मजबूर कर सकती है। इस विषय पर जब एक फ्रांसीसी पत्रकार चार्ल्स पैत्रास ने उनसे प्रश्न पूछा तो उसके उत्तर में उन्होंने कहा – "जो सिपाही गोली चलाए जाने के आदेश का उल्लंघन

करता है वह अपनी शपथ तोड़ता है और स्वयं को अपराधी बनाता है। मैं सिपाहियों व अफसरों को आदेश न मानने के लिए नहीं कह सकता क्योंकि जब मेरी सत्ता आएगी तो मुझे भी इन्हीं अफसरों और सैनिकों के इस्तेमाल की जरूरत होगी। यदि मैं इन्हें आज्ञा का उल्लंघन करना सिखाऊँगा तो कल वे मेरे राज्य में ऐसा ही कर सकते हैं।"[44]

अतः गाँधीजी की नीतियाँ और आदर्श स्वयं की संतुष्टि के लिए ही थे। जैसा कि इस घटना से स्पष्ट है उससे देश की आज़ादी का कोई सरोकार न था और उसने देश की जनता को बार–बार भ्रमित ही किया। स्वतन्त्रता आंदोलन में उनकी भूमिका पर आज जो सवाल उठाए जा रहे हैं वे स्वाभाविक ही हैं।

अंततः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इतिहास की पुनर्व्याख्या और अपने मन्तव्य को व्यक्त करने में मृदुला गर्ग ने जिस कालखण्ड का चयन किया है, उसकी घटनाओं की प्रामाणिकता इतिहास सम्मत है। साथ ही भगतसिंह और उनके कार्यक्रम का मसौदा प्रस्तुत करना, विश्व इतिहास की घटनाओं का उल्लेख, भारतीय जनता पर उनका प्रभाव तथा स्वाधीनता आंदोलन की सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं का ब्यौरा, लेखिका के गहन चिंतन और ज्ञान को सिद्ध करता है। इस इतिहास से जोड़कर लेखिका ने जिस कथा की सृष्टि की है वह उनके अभिप्रेत को पाठकों तक पहुँचाने में पूरी तरह से सहायक सिद्ध हुई है। इतिहास और आख्यान के परस्पर गुंथे हुए तंतुओं ने उपन्यास को सफल व प्रभावी बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

सन्दर्भ सूची

1.	जवाहरलाल नेहरू : बेनकाब – हंसराज रहबर	भूमिका
2.	अनित्य – मृदुला गर्ग	पृष्ठ-87
3.	यातना शिविर में – हिमांशु जोशी	भूमिका
4.	भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज – सं॰ वीरेन्द्र सिंधु	पृष्ठ-53–54
5.	वही	पृष्ठ-91
6.	आधुनिक भारत – सुमित सरकार	पृष्ठ-20
7.	वही	पृष्ठ-20
8.	अनित्य	पृष्ठ-ix
9.	वही	पृष्ठ-xiii
10.	वही	पृष्ठ-viii
11.	हंस, जनवरी 99, इतिहास और उपन्यास : आनन्द प्रकाश	पृष्ठ-8
12.	अक्षरा, अक्तूबर 91 से मार्च 92	पृष्ठ-92
13.	यातना शिविर में – हिमांशु जोशी	पृष्ठ-113
14.	अनित्य	पृष्ठ-177
15.	वही	पृष्ठ-169
16.	वही	भूमिका
17.	वही	पृष्ठ-181
18.	वही	पृष्ठ-53

19. अनित्य पृष्ठ-94

20. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – बिपिनचन्द्र पृष्ठ-373

21. अनित्य पृष्ठ-94

22. वही पृष्ठ-101

23. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – बिपिनचन्द्र पृष्ठ-366-367

24. अनित्य पृष्ठ-49

25. आधुनिक भारत का इतिहास – यशपाल एण्ड ग्रोवर पृष्ठ-500

26. आधुनिक भारत – सुमित सरकार पृष्ठ-353

27. आधुनिक काल का इतिहास : सी.डी.एम. केटलबी पृष्ठ-605

28. वही पृष्ठ-609

29. वही पृष्ठ-601

30. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – बिपिनचन्द्र पृष्ठ-204-205

31. वही पृष्ठ-191-192

32. वही पृष्ठ-370

33. आधुनिक भारत – सुमित सरकार पृष्ठ-289

34. अनित्य पृष्ठ-94

35. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष – बिपिनचन्द्र पृष्ठ-223

36. मृदुला गर्ग के नाम मन्मथनाथ गुप्त का पत्र

37. कथादेश, मई 1999, मैं और मेरा समय – मृदुला गर्ग पृष्ठ-8

38.	कथादेश, मई 1999, मैं और मेरा समय – मृदुला गर्ग	पृष्ठ-11
39.	अनित्य	पृष्ठ-58
40.	कथादेश, मई 99	पृष्ठ-12
41.	हंस, जनवरी, 99	पृष्ठ-107
42.	जवाहरलाल नेहरू : बेनकाब – हंसराज रहबर	पृष्ठ-106
43.	भारतीय मुक्ति संघर्ष, कुछ कड़वी सच्चाइयाँ – नौजवान दस्ता	पृष्ठ-12–13
44.	वही	पृष्ठ-12–13

अध्याय-4

इतिहास के आख्यानीकरण की कला

अध्याय–4

इतिहास के आख्यानीकरण की कला

उपन्यास को अंग्रेजी में फिक्शन कहा जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है – कल्पना या मिथ्या–कथा। लेखक या उपन्यासकार इस मिथ्या–कथा में सत्य या तथ्यों का मिश्रण करके कथा को एक नवीन रूप प्रदान करता है। इस मिलावट की तुलना सुनार के सोने में अन्य धातु की मिलावट से भी की जा सकती है। इतिहास और कथा की मात्रा के अनुसार 'निर्मित' रूप का स्वरूप भी भिन्न–भिन्न होता है। कहीं 'झाँसी की रानी' जैसा शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास निर्मित होता है तो कहीं 'चित्रलेखा' जैसा ऐतिहासिक आभास प्रस्तुत करने वाला उपन्यास। आख्यान या उपन्यास इतिहास के प्रयोग भर से ऐतिहासिक नहीं हो जाता है, लेखक की कला इन दोनों के तंतुओं को जितनी अधिक कुशलता से बुनती है उपन्यास उतना ही अधिक सशक्त और प्रभावी सिद्ध होता है। इस अध्याय में मेरा उद्देश्य 'अनित्य' की कथा का विश्लेषण करते हुए उसके इतिहास और आख्यान रूप पर प्रकाश डालना है कि ऐतिहासिक तथ्य को लेखिका की कल्पना ने किस प्रकार से आख्यान में ढालने का कार्य किया है।

पिछले अध्यायों में इतिहास और उपन्यास के अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन करते समय हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पारम्परिक रूप से यदि देखा जाए तो 'अनित्य' ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है। किन्तु हर रूप जो परम्परा से हट कर होता है, अपने लिए नई कसौटी और आलोचना–दृष्टि की अपेक्षा अवश्य रखता है। ये प्रयोग नूतनता बनाए रखते हैं अन्यथा पुरानी परम्पराओं की जकड़न कभी–कभी पोखर के पानी की भाँति सड़ाँध पैदा करने लगती है। 'अनित्य' के साथ भी कुछ–कुछ ऐसा ही

है। मृदुला गर्ग ने एक काल्पनिक कथा को इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कालखण्ड से जोड़कर उपन्यास की सृष्टि की है। पात्र और कथा के प्रति वे स्वयं स्पष्ट कहती हैं कि ये काल्पनिक हैं किन्तु इस बात को भी स्वीकार करती हैं कि उस समय की परिस्थितियों के विश्लेषण में इन तत्त्वों का पूरा–पूरा योगदान है, अन्यथा यह एक प्रश्न मात्र बनकर रह जाता कि "समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाने के लिए आज़ादी माँगी जाती है कि सामयिक सुविधानुसार शासन करने के लिए।"[1] और लेखिका का उद्देश्य जिसे उन्होंने उपन्यास की भूमिका में भी स्पष्ट कर दिया है, यही था कि वे इस बात का अध्ययन करना चाहती थी कि समझौतावादी नीतियों का जनसाधारण के मस्तिष्क पर दीर्घकालिक रूप से क्या असर पड़ता है। मृदुला गर्ग के इस लेखकीय उद्देश्य ने ही ऐतिहासिक तथ्य को देखने का विशिष्ट दृष्टिकोण दिया है, जिससे 'अनित्य' बन गया है।

'अनित्य' इतिहास के एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कालखण्ड को दृष्टि में रखकर लिखा गया है। यह विशिष्ट कालखण्ड स्वतन्त्रता आंदोलन के आखिरी दौर सन् 1931–1942 से सम्बन्धित हैं। इस कालखण्ड में अहिंसात्मक और क्रांतिकारी आंदोलन में विश्वास रखने वाले लोगों ने अपने–अपने ढंग से भूमिका का निर्वाह किया। नेताओं ने आज़ादी की लड़ाई का मुआवजा लिया और आज़ादी के नाम पर गोरे का स्थान काले शासक ने ले लिया। यह उपन्यास स्वतन्त्रता आंदोलन के प्रति जिस दृष्टि को प्रस्तुत करता है वह न सिर्फ लेखिका के पक्ष को स्पष्ट करती है अपितु तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सत्य का एक अन्य पहलू भी प्रस्तुत करती है।

ऐतिहासिक उपन्यास की कथा अथवा पात्र भले ही ऐतिहासिक हों किन्तु

अपने भावबोध में वह आधुनिक ही होता है। उसमें चित्रित इतिहास वर्तमान से जुड़कर आता है और वर्तमान के प्रश्नों को अतीत से जोड़कर उनके उत्तरों की खोज करता है। 'अनित्य' इमरजेन्सी के अध्ययन से आया हुआ उपन्यास है। दूसरे शब्दों में, यह वस्तुतः आपातकाल के समय छीनी गई स्वतन्त्रता और उसके प्रभावों की प्रतिक्रिया है। उस समय उत्पन्न परिस्थितियों ने लेखिका को इन प्रश्नों को इतिहास से जोड़कर देखने और उनका उत्तर पाने के लिए प्रेरित किया। उनका विचार है – "1975 में जब आपातस्थिति लागू की गई तो बहुतों को लगा, फिर से आज़ादी छिन गई – पर ऐसे लोग भी थे; मेरे जैसे, जो महसूस कर रहे थे कि वास्तव में, सही मायनों में हम कभी आज़ाद हुए ही नहीं थे, हमारा मानस पराधीन बना रहा था। और पराधीन मानस में केन्द्रित सत्ता ने व्यक्ति–पूजा के जहर के साथ मिलकर, जनसाधारण को स्वतन्त्र चिन्तन और कर्म करने का अवसर ही नहीं दिया था। अपने ही देश में आधे से ज्यादा आबादी उपनिवेश की तरह जी रही थी; अशिक्षित बेरोजगार (वाजिब आय न अर्जित करने के अर्थ में) और प्राथमिक चिकित्सा से महरूम, तन और मन से अस्वस्थ। इसीलिए आपात्स्थिति हटने के बाद भी, हर क्षेत्र में तानाशाही और भ्रष्टाचार कायम रहे।"[2] इन्हीं सब प्रश्नों को दृष्टि में रखकर 'अनित्य'का लेखन हुआ, और जो प्रश्न लेखिका को उद्वेलित कर रहे थे, पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से उपन्यास में अभिव्यक्त होकर पाठक तक पहुँचे। इस दृष्टि से देखा जाए तो 'अनित्य' की कथा एक ओर अविजित – एक सामान्य आदमी की जीवन में भूमिका और उसके अपराधबोध की कहानी है तो दूसरी ओर राजनैतिक उथलपुथल (स्वतंत्रतापूर्व की) और समझौतावादी नीति का स्वरूप प्रस्तुत करती है।

'अनित्य' का पूरा कलेवर दो खण्डों में विभक्त है – 'दुविधा' तथा 'प्रतिबोध'।

प्रथम खण्ड 164 पृष्ठों में तथा द्वितीय 95 पृष्ठों में समेटा गया है। इसका केन्द्रीय पात्र अविजित है, तथा उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है उसके द्वारा अभिनीत भूमिका। अविजित मानसिक स्तर पर अशांत व्यक्ति है और उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि अपने ही आईने में वह सदा खुद को कटघरे में खड़ा पाता है। जब भी वह खुश होना चाहता है, उसका अतीत उसे अपने पाश में जकड़ लेता है और विक्षिप्तता की अवस्था में ले जाता है। उसकी जिम्मेदारियों की जकड़ उसे कहीं दूर भी नहीं जाने देती – "अपनी जिम्मेवारी को नकार कर गरदन छुड़ा लेना क्या इतना आसान है? सिनबाद की पीठ पर चढ़े बूढ़े से भी मजबूत पकड़ होती है उसकी।"[3]

अविजित और उससे जुड़ी कथा कल्पना–प्रसूत है और इतिहास से उसका सम्बन्ध इतना ही सा है कि उसने स्वतन्त्रता आंदोलन में हिस्सा लिया है। उसके साथी काजल, चङ्गा, सरण, हरीश आदि कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे हैं और गाँधीजी की नीतियों में उनका विश्वास है। वह विजयलक्ष्मी पण्डित के साथ एक ही कालेज में पढ़ता था और भाषण आदि बहुत अच्छे देता था। आज़ादी की लड़ाई में उसकी सक्रियता का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसका नाम 'गद्दारों' की सूची में आ जाने के कारण उसे आई॰सी॰एस॰ की परीक्षा में बैठने से रोक दिया गया। अविजित ने चन्द्रशेखर आज़ाद की हत्या को अपनी आँखों से देखा है, विदेशी कपड़ों की होली जलाई है, गाँधीजी के आह्वान पर जुलूसों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया है। मोतीलाल नेहरू के समक्ष भी वह उपस्थित है। राजनैतिक घटनाक्रम से वह अछूता रहा हो ऐसा नहीं है अपितु हर मीटिंग और वाद–विवाद में उसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। लेकिन एक अन्य विशिष्टता

जो इस उपन्यास में देखी जा सकती है, वह यह है कि ऐतिहासिक घटनाएँ इसमें नाटक के दृश्य की तरह नहीं घटती हैं, पात्रों के माध्यम से उनकी सूचना भर मिलती है। अतः फोकस में लेखिका ने जनसाधारण को रखा है और उन पर पड़े इम्पेक्ट को हम उपन्यास में देख सकते हैं। उदाहरण के लिए गाँधी–इर्विन समझौते की प्रतिक्रिया दृष्टव्य है – "और मालूम है", हरीश ने कहा – "भगतसिंह राजगुरु और सुखदेव का जिक्र तक करना गाँधीजी ने जरूरी नहीं समझा। इतनी बड़ी–बड़ी सिद्धान्त की बातें और वक्त आने पर संगठन सब कुछ हो गया। कांग्रेस के सत्याग्रही जेलों से छोड़ दिये जायें, बस सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लिया जायेगा। उन लोगों से कोई सरोकार नहीं है जो स्वतन्त्रता के लिए अपनी जान की बाजी लगा चुके हैं।"[4]

वस्तुतः ऐतिहासिक घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने जिस युक्ति का सहारा लिया है वह बहुत प्रभावपूर्ण बन पड़ी है तथा देश के नेताओं की मनमानी तथा निर्णयों पर प्रश्नचिह्न भी लगाती है। एक अन्य बात जो इतिहास के पुनर्लेखन से जुड़ी हुई है, वह यह कि कुछ नेताओं को महापुरूष या महात्मा के ओहदे पर बिठाकर उनकी भूमिका के निर्वाह पर लगे सभी प्रश्नों का इतिहास की पुस्तकों में उल्लेख ही नहीं किया गया। जबकि वास्तविकता यह थी कि ऐसे प्रश्न और असंतुष्टि के स्वर उस समय भी उठ रहे थे और आज स्वतन्त्रता के लगभग 52 वर्षों के पश्चात् खुलकर जिनकी अभिव्यक्ति नाटक, सिनेमा और पुस्तकों के माध्यम से हो रही है। आने वाली पीढ़ी की विचारधारा को अपने अनुसार मोड़ लेने का इससे बड़ा उदाहरण दूसरा कहाँ मिलेगा। 'अनित्य' में प्रस्तुत इतिहास से जुड़ी एक अन्य बात यह है कि इसमें इतिहास वर्तमान के बजाय अपने स्वरूप के

अनुसार अतीत या व्यतीत में ही है। जब–जब अतीत भूत बनकर अविजित के सिर से चिपट जाता है, अतीत अथवा इतिहास की घटनाएँ फ्लैशबैक में हमारे सम्मुख उपस्थित होने लगती हैं अथवा उपन्यास के पात्र वार्ता के बीच में अपने अतीत का पुनः स्मरण करते हैं –

"और आखीर में उन्नीस सौ सैंतालीस की वह नाकाबिले बयान मारकाट..... दिलों में जमी हिंसा का नंगा नाच..... किन्हीं अंग्रेज सार्जेन्टों की ठोकरों से शुरू हुआ सिलसिला.....

आज भी अगर कहीं वह अंग्रेज सार्जेन्ट अविजित को मिल जाये.....।

"पिताजी !" कमरे में आतंक से सना एक शब्द गूंजा। चौंककर अविजित ने सिर ऊपर उठाया।

कौन? कौन है यह ?

शुभा? हाँ शुभा। उसकी बेटी।

पर... वह अंग्रेज सार्जेन्ट? चड्ढा? लड़कों का हुजूम ! नफरत से सनी लाठियाँ! बीते हुए वक्त की कचोटती अकर्मण्यता ! "पिताजी !" शुभा कह रही है, "क्या हो गया आपको?" बीता हुआ वक्त! बीत जाने दो। नहीं क्यों बीत रहा। वह अपने घर पर है। लड़ाइयाँ खत्म हो चुकीं। हासिल कुछ नहीं हुआ, काजल कहती है। कुछ तो हुआ है हासिल.... हाँ कुछ..... मानना पड़ेगा..... नहीं क्यों मान पा रहा....."[5]

इसी प्रकार अतीत जब–तब अविजित के वर्तमान में आकर खड़ा हो जाता है और उसे पूरी तरह से ग्रस लेता है। उपर्युक्त घटना आंदोलनकारियों पर हुए लाठीचार्ज, अनुशासन के कारण खुद को प्रतिहिंसा से रोक लेने की स्थिति तथा

मन ही मन हिंसा के प्रयोग की ओर इंगित कर रही है कि अहिंसा के बड़े–बड़े उपदेशों के बावजूद हिंसा लोगों के मन–मस्तिष्क से निकल नहीं पाई थी।

इस प्रकार 'अनित्य' में इतिहास फ्लैशबैक में सूचना या वर्णन के माध्यम से आया है। शेष कथा ऐसे लोगों से जुड़ी है जिनका इतिहास के पृष्ठों में कहीं नाम नहीं है। इतिहास उनकी पुष्टि भले ही न करे किन्तु उनकी वास्तविकता पर संदेह भी नहीं किया जा सकता है। उनकी भूमिका आंदोलन में चाहे जो भी रही हो, यद्यपि वे उस दौर से अछूते नहीं रहे और सक्रिय होकर अपनी भूमिका को निभाते रहे। फिर भी इन सभी राजनैतिक उथल–पुथल से भिन्न वे बहुत ही सामान्य जीवन जीते हैं – जिसमें प्रेम है, कर्त्तव्य है, घृणा है, विद्वेष है और वे सभी मानवीय भाव हैं जिनकी अपेक्षा हम एक सामान्य आदमी में करते हैं। इतिहास–कथा से बिलकुल परे यह कथा अविजित, संगीता, श्यामा, अनित्य, प्रभा, शुभा आदि की कथा है।

यह कथा आज़ादी के बाद की और अविजित के वर्तमान की है। एक निम्नमध्यवर्गीय पात्र अपनी मेहनत और दुनियादारी की जोड़–तोड़ के फलस्वरूप सिंघानिया ग्रुप में जनरल मैनेजर के पद पर है। यद्यपि अन्य कांग्रेसियों की तरह उसे भी किसी ऊँचे ओहदे पर होना चाहिए था। काजल कहती है – "मैंने सोचा था, तुम मिनिस्टर या गवर्नर जैसी कोई चीज़ होगे।"[6] अविजित ने आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लिया है और पिता की संतुष्टि के लिए आई.सी.एस. की परीक्षा भी पास की है। इस प्रकार से वह एक योग्य व्यक्ति है। बिखरे परिवार की जिम्मेदारी उठाने से बचपन में ही बड़ा हो चुका अविजित उपन्यास के आरम्भ में श्यामा के पति और शुभा, प्रभा, खोखी और सुधांशु के पिता के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। उसकी पत्नी श्यामा शारीरिक रूप से कम किन्तु मानसिक बीमारी से

ज्यादा पीड़ित है। लेखिका ने उसके लिए 'बादल से बनी औरत' उपमा का प्रयोग किया है। श्यामा को हमेशा एक सहारे की आवश्यकता है। कुल मिलाकर स्थूल रूप से देखा जाए तो अविजित को पत्नी का सुख नहीं है। इस स्थूल सत्य की गहराई में कई छुपी हुई वास्तविकताएँ हैं जो वर्तमान परिस्थितियों के लिए अविजित को ही दोषी ठहराती हैं। वास्तव में अविजित की भूमिका और श्यामा की बीमारी से ऐसी स्थितियाँ पैदा हो जाती है जिनके फलस्वरूप अविजित संगीता के प्रति अपराध कर बैठता है और जीवन भर उससे आँख भी नहीं मिला पाता है।

अविजित के जीवन में जितनी भी स्त्री पात्र हैं सभी उससे किसी न किसी प्रकार जुड़ी रही हैं। जब काजल और अविजित बहुत सालों बाद मिलते हैं तो प्रभा कहती है – "हद हो गयी यार। कभी ऐसी भी कोई औरत मिलेगी जिसका पिताजी से इश्क न रहा हो।"[7] अतः अविजित के जीवन में कई स्त्रियाँ आई हैं जिनमें से प्रथम आगमन काजल बैनर्जी का हुआ है। आज़ादी की लड़ाई के समय दोनों साथ काम करते थे। काजल अविजित से प्रेम करती है और प्रणय–निवेदन भी करती है किन्तु अविजित उसे ठुकरा देता है, क्योंकि उसका चेहरा काला और कुरूप है। अविजित काजल के प्रेम को अस्वीकार करता है, लखनऊ की सबसे सुंदर लड़की और जज सिंघल की पुत्री श्यामा से विवाह करके अपनी प्रेस्टीज़ बढ़ाता है किन्तु शारीरिक क्षुधा पूर्ण करने में अक्षम पत्नी को प्रेम नहीं कर पाता है। वह रोबोट की तरह मात्र अपने दायित्वों की पूर्ति करता है जिसके मन में उसके लिए दया तो है किन्तु प्रेम नहीं। इसी अतृप्त कामना की पूर्ति वह अपने पर आश्रित संगीता की देह द्वारा करता है। संगीता उसके शिकारी हाथों में समर्पण मात्र इसलिए कर देती है क्योंकि वह अविजित को प्रेम करती है। किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि महज

भूख और दैहिक आकर्षण के वशीभूत होकर अविजित ने उसके अस्तित्व का दुरुपयोग किया है तो वह अंत तक उस अपमान और प्रतिशोध की ज्वाला से अपने को मुक्त नहीं कर पाती। प्रतिशोधस्वरूप वह अपने भविष्य का सर्वनाश कर लेती है। काजल संगीता और श्यामा के अतिरिक्त चौथा नारी–चरित्र रंजना है। अविजित यदि किसी से प्रेम करता है तो वह है – रंजना। वह उसके सम्मुख जाकर अपने हर पाप का कन्फेशन और अपने प्रेम का इज़हार करना चाहता है। काजल के व्यक्तित्व के आगे वह बहुत छोटा महसूस करता है, संगीता के प्रति किया गया अपराध उसे उसका सामना करने के हिम्मत नहीं जुटाने देता और श्यामा जो पत्नी होते हुए भी 'स्पर्श से परे' है, जिसके प्रति मात्र उसके कर्त्तव्य हैं, साहचर्य का सम्बन्ध नहीं, ऐसे में रंजना ही वह एकमात्र नारी–पात्र है जिसकी छाया उसे आक्रान्त नहीं करती अपितु अपने विशाल, ओजस्वी नारी चरित्र की छाया से शीतलता प्रदान करती है। उपन्यास में एक स्थान पर अविजित और श्यामा के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है – "बादल से बनी औरत – स्पर्श से परे; अविजित सोच रहा है, इतनी खूबसूरत औरत कभी नहीं देखी... कम औरतें नहीं देखी उसने। शायद खूबसूरती औरत को औरत नहीं रहने देती.... मिकदार में बढ़ जाए तो दवा जहर हो जाती है। श्यामा... श्यामा की माँ बचपन में ही गुजर गई थी। तुम्हीं मेरी माँ हो, उसने अविजित से कहा था, शादी के पहले दिन। पति और माँ।"[8]

'दुविधा' खण्ड में अविजित के अन्य सभी पात्रों से सम्बन्धों को दर्शाया गया है। प्रभा और शुभा उसकी विगत की भूमिका से अभिभूत हैं। यहाँ तक कि उनकी सहेलियाँ भी अविजित के व्यक्तित्व से प्रभावित रहती हैं, उसे आलराउंडर समझती हैं। अविजित भी अपनी शेखी खूब बघारता है। इसके अतिरिक्त चड्ढा,

स्वर्णा, सरण, शुक्लजी, भंडारी और सुस्मिता तथा सुधांशु उपन्यास में उपस्थित रहकर कथासूत्र को आगे बढ़ाने में सहयोग देते हैं। 'प्रतिबोध' खण्ड में घटनाओं में गति आ जाती है। अतीत ने उसके परिवार के हर व्यक्ति को उसकी भूमिका प्रदान कर दी है अथवा ग्रस लिया है। प्रभा और शुभा, यहाँ तक कि अंततः खोखी भी अपने पिता के वास्तविक स्वरूप से परिचित हो गई है। श्यामा को जब यह बोध हो जाता है कि उसका पति उससे कहीं ज्यादा निर्बल है तो वह बिस्तर छोड़कर उसे सहारा देने दौड़ पड़ती है। अनित्य तो सदा ही से उसे जानता रहा है किन्तु कुछ कहता नहीं है। दूसरे खण्ड में आकर कथा के प्रवाह में सभी पात्र बह रहे हैं। प्रभा और शुभा अपने–अपने निर्णय ले लेती हैं और सुस्मिता सारे दायित्व अपने सिर ले लेती है। स्वर्णा अपने पति के पास चली गई है और सबके जाने के बाद अन्ततः मानसिक रूप से रुग्ण अविजित, मानसिक रूप से मंद सुधांशु और श्यामा तथा खोखी रह जाते हैं। जीवन की स्वाभाविक गति में हस्तक्षेप करते–करते अंततः अविजित का जीवन कागज की कतरन के ढेर की भाँति निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

कुल मिलाकर यदि इस उपन्यास के कथानक का विश्लेषण करें तो इसका अधिकांश भाग काल्पनिक ही है। तिथियों का ब्यौरा, बंगाल का अकाल, सविनय अवज्ञा, भारत छोड़ो आंदोलन आदि स्वतन्त्रता पूर्व की घटनाओं में ही इतिहास की छटा है अन्यथा स्वतन्त्रता के पश्चात् की कथा समझौतावादी नीति के इम्पेक्ट को दिखाती है।

उपन्यास के इस निर्मित रूप का एक कारण है कि आज़ादी की लड़ाई मृदुला गर्ग ने बहुत ही नजदीक से देखी और सुनी थी। आज़ादी मिलने के समय

उनकी उम्र नौ वर्ष की थी। घर में इन सबके बारे में रात–दिन चर्चा चलती रहती थी अतः निजी अनुभव न होते हुए भी ये सब उनकी मानसिकता के अंग बन गए। उन्हीं के शब्दों में – "अपने तईं, मुझे लगता है कि 1947 की आज़ादी की लड़ाई की कहानी, मैंने बचपन से सुनी–देखी और आत्मसात् की थी, इसलिए वह काफी ठोस पृष्ठभूमि के रूप में, 'अनित्य' उपन्यास में उभरी। पर बाद की घटनाएँ चूँकि मेरे वयस्क मानस ने झेलीं, इसलिए उनके घटित यथार्थ का विवरण नहीं, उनसे उत्पन्न भावबोध ही कृतियों में आया।"[9]

'अनित्य' का पहला खण्ड पाठक को ऐतिहासिक घटनाओं और उनमें अविजित की उपस्थिति से परिचय कराता है जबकि दूसरा भाग उन सभी भूलों और समझौतावादी नीतियों के दुष्परिणामों को दिखाता है। अविजित का खोखला चरित्र प्रभा और शुभा के जीवन में तूफान खड़ा कर देता है। ऐसे में प्रभा काजल के चरित्र के प्रभाव में आकर क्रांति का मार्ग चुन लेती है और शुभा भी जब अविजित की तुलना में डॉक्टर जैन को ऊँचा पाती है तो उसके साथ घर से चली जाती है। इस घटना की सूचना हमें अविजित के द्वारा मिलती है – "शुभा को डॉक्टर जैन मुंबई ले गए हैं। वहाँ नाटक और फिल्म..." "शुभा डाक्टर जैन के साथ भाग गयी।" तूफान में टूटकर गिरते पेड़ की तरह तड़पकर अविजित ने कहा। "क्या कह रहे हो।" स्तंभित श्यामा ने बाधा दी, "डाक्टर जैन उसके पिता समान हैं।"

"पिता समान।" अविजित ठठा कर हँस दिया, "पुरुष और पिता समान!"[10] असल में अविजित स्त्री और पुरुष के संबंधों की वास्तविकता को जान चुका है क्योंकि संगीता की उम्र उससे काफी कम होने के बावजूद वह अपने वासनातुर पुरुष को रोक नहीं सका और उसके प्रति अन्याय कर बैठा। 'अनित्य' उपन्यास

की कथा दोनों स्तरों पर चलते हुए लेखकीय उद्देश्य को स्पष्ट करने में सफल होती है।

इतिहास और कल्पना की यह अनूठी बुनावट बनावटी नहीं जान पड़ती अपितु कुल मिलाकर स्वाभाविक बन पड़ती है। कोई भी चैतन्य व्यक्ति अपने समय से अछूता नहीं रह पाता है और फिर लेखक तो उन सभी से जूझता हुआ जीवन जीता है। द्वितीय विश्वयुद्ध, 1947 की आज़ादी, आपातकाल की घोषणा (1975), भोपाल गैस काण्ड (1984), सोवियत संघ का विघटन (1991), उनके जीवनकाल की अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाएँ रही हैं। "इन सभी घटनाओं ने नये चिन्तन और भावबोध को जन्म दिया और साहित्य पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा। घटनाएँ जस की तस, विवरण बनकर साहित्य में आयें, यह जरूरी नहीं हैं। उनसे प्रभावित भावसंवेग, विमर्श, उथल–पुथल, ऊहा–पोह, अनेक रूप धरकर कृति में अभिव्यक्ति पाते हैं। पात्रों की गढ़न, रिश्तों की तफ्तीश, भाषा की प्रकृति शिल्प में प्रयोग, सब व्यक्ति और व्यवस्था के बदलते स्वरूप को शब्द देते हैं।[11] अतः इन सभी वास्तविकताओं से बहुत नजदीक का परिचय होने के कारण 'अनित्य' स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति है।

'अनित्य' के अध्ययन के दौरान जिन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से हमारा परिचय होता है उनसे लेखिका की इतिहास की समझ तथा साथ ही आलोचक की भाँति उनके विश्लेषण की क्षमता का का परिचय भी प्राप्त होता है – "....स्वयंभूमिध्वंस नीति के अन्तर्गत किसानों की फसलें जला डालना और यातायात के साधन छीन लेना क्या प्रख्यात ब्रिटिश 'सेन्स ऑफ ह्यूमर' का नमूना है या शेक्सपीयर की ग्रेंड आयरनी का ! जो भूमि उनकी नहीं है, जिसकी रक्षा करने का उनका कोई इरादा नहीं है, उसे ध्वंस करने में इतना निपुण कौशल ! और

वाकई जिसकी जमीन वह है, उन्हें हक नहीं है कि उसकी हिफाजत कर सकें। ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानी हाथों में हथियार देने को तैयार नहीं है। ब्रिटिश ह्यूमर का एक और नमूना। ब्रिटेन की हार को जीत में बदलने के लिए वह हिन्दुस्तानी हाथों में हथियार पकड़ा सकते हैं पर हिन्दुस्तान की हिफाजत के लिए नहीं। सिर्फ बहादुर कहलाए जाने के लालच में हमारे सिपाही किस गरिमा के साथ मिस्र, सीरिया और ईराक के तपते रेगिस्तानों में जाने दे रहे हैं और उसका मुआवजा हिन्दुस्तानी आवाम को यह मिल रहा है.....।"[12]

यह उदाहरण इतिहास की घटना की न सिर्फ जानकारी देता है अपितु उसके अच्छे–बुरे प्रभावों को भी बताता चलता है।

'अनित्य' उपन्यास से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि युगीन परिस्थितियों के अनुसार लेखिका ने ऐतिहासिक घटनाओं को पुनः व्याख्यायित किया है। समझौतावादी नीति के फलस्वरूप प्राप्त की गई स्वतंत्रता और उसके दीर्घकालिक प्रभाव के कारणों की तह में जाने के लिए मृदुला गर्ग ने इतिहास को सिलसिलेवार ढंग से प्रस्तुत नहीं किया है अपितु कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर ही रुक कर विचार किया है। इस प्रक्रम में उन्होंने गाँधीजी और क्रांतिकारी आंदोलन तथा उनके महत्त्वपूर्ण नेताओं और उनके अनुगामियों के व्यक्तित्व का विश्लेषण प्रस्तुत कर, तथा आज़ादी की लड़ाई में उनकी भूमिका को प्रस्तुत किया है। स्पष्टतः उनकी सहानुभूति भगतसिंह तथा अन्य क्रांतिकारियों के साथ रही है। इस सहानुभूति का कारण हिंसक क्रांति तथा उनकी शहादत नहीं है, अपितु लेखिका का मानना है कि 'हमारा उद्देश्य आज़ादी लेना था, सदाचार का पाठ पढ़ाना नहीं।' जब–जब लोग अपने 'भगवान' के आह्वान पर अपने जीवन की आहुति देने को तत्पर हो जाते थे तब–तब ब्रिटिश सरकार

की समझौतावादी नीतिं उनके जोश को ठण्डा कर देती थी। यह नीति रोटी का टुकड़ा डालने जैसी होती थी। मृदुला गर्ग का मानना है कि उस भूल के कारण हम आज भी पूर्णरूपेण स्वतन्त्र नहीं हुए हैं, अमीर गरीबों पर तथा भौतिक सुख–ऐश्वर्य भूख पर शासन कर रहा है, आर्थिक असमानता की खाई दिन–ब–दिन गहरी होती जा रही है। "भगतसिंह की शहादत का अर्थ सिर्फ बहादुरी से देश के लिए कुर्बान हो जाना नहीं था। उनके पास बाकायदा एक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रोग्राम था, जिसका उद्देश्य समाज के मौजूदा ढाँचे को बदलकर समाजवाद लाना था। गाँधी से उनका विरोध भी इसी तथ्य को लेकर था (हिंसा–अहिंसा के साधन को छोड़कर)।[13]

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लेखिका ने 'अनित्य' में कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की गहरी पड़ताल की है जिनमें से एक है – सविनय अवज्ञा आंदोलन का स्थगन और गाँधी–इरविन समझौते की शर्तों में से भगतसिंह की फाँसी की सिफारिश को निकाल देना। प्रश्न उठता है कि उन्होंने इन्हीं घटनाओं का चयन क्यों किया है।

उपन्यासकार ऐतिहासिक घटनाक्रम को अपने ही तरीके से तोड़ता है। यह तोड़ना ही उसका दृष्टिकोण होता है। इतिहासकार जहाँ तथ्य और घटना से बँधा रहता है, वहीं उपन्यासकार उसे अपने कथ्य को अभिव्यक्ति देने के लिए उसका चयन करता है और अपने अनुसार उसकी व्याख्या करता है। मृदुला गर्ग ने इस घटना के प्रभावों को दिखाकर 'इतिहास पुरुष' गाँधी के व्यक्तित्व पर लगे आरोपों पर फोकस किया है –

हरीश ने भीतर घुसते हुए कहा था, "मैंने पूरा पढ़ लिया है। गाँधी जी

ने नमक बनाने की इजाजत के लिए देश को बेच दिया।".....

"और मालूम है, "हरीश ने कहा, "भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव का जिक्र तक करना गाँधी जी ने जरूरी नहीं समझा। इतनी बड़ी–बड़ी सिद्धान्त की बातें और वक्त आने पर अपना संगठन सब कुछ हो गया। कांग्रेस के सत्याग्रही जेलों से छोड़ दिये जायें, बस सविनय अवज्ञा भंग – आंदोलन वापस ले लिया जायेगा। उन लोगों से कोई सरोकार नहीं है जो स्वतन्त्रता के लिए अपनी जान की बाजी लगा चुके हैं?".....

"कम–अज–कम सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की फाँसी रद्द करने को समझौते की आवश्यक शर्त बना सकते थे।"[14]

गाँधी–इर्विन समझौता ही नहीं, कांग्रेस के बहुत से ऐसे निर्णय थे जो मात्र अपनी स्वार्थ–सिद्धि के निमित्त लिए गए थे। उपन्यास में इनकी अभिव्यक्ति कभी तो सीधे–सीधे अभिधात्मक रूप में, तो कभी अविजित की भूमिका पर प्रश्नचिह्न लगाकर की गई है।

'अनित्य' में इतिहास और आख्यान के सम्बन्ध पर विचार करते हुए दूसरा बिन्दु इसके चरित्रों से जुड़ा हुआ है। यह तो हम पहले भी कह आये हैं कि 'अनित्य' के पुरुष और नारी–पात्र लेखिका की कल्पना से उद्‌भूत हैं। इन चरित्रों की सृष्टि करके मृदुला गर्ग ने इन्हें समय (काल) और परिस्थितियों से जूझने के लिए छोड़ दिया है। अविजित, अनित्य, चड्‌ढा, मार्शल, काजल, संगीता, श्यामा, गौहरबाई, यज्ञदत्त शर्मा आदि चरित्रों में से कोई भी चरित्र ऐतिहासिक नहीं है। ऐतिहासिक घटनाक्रम में उनकी हिस्सेदारी इन चरित्रों के ऐतिहासिक होने का भ्रम पैदा करती है। ऐतिहासिक चरित्रों के समकालीन होने के बावजूद इतिहास के पृष्ठों में ये नाम

अनुपस्थित हैं। इसका कारण यह है कि पारम्परिक रूप में इतिहास के पृष्ठ केवल अतिमहत्त्वपूर्ण व्यक्तियों तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं को ही प्रमुखता तथा स्थान देते हैं, जबकि इतिहास को आधार मामूली आदमी प्रदान करते हैं। सिकन्दर की पोरस पर विजय में मात्र उसी की वीरता का नहीं अपितु उसके सैनिकों के अदम्य उत्साह और अनथक परिश्रम का बहुत बड़ा हाथ था। इसी तरह गाँधी को महात्मा बनाने में इस देश की जनता की अंधश्रद्धा और भक्ति का योगदान रहा। अलका सरावगी ने अपने उपन्यास में एक स्थान पर कहा है कि – "इतिहास मामूली आदमियों की कथा नहीं कहता पर हर इतिहास मामूली आदमियों से पटा पड़ा होता है जो इस इतिहास से जूझते हुए जीवन काटते हैं।"[15]

इन काल्पनिक पात्रों ने इतिहास की भूमि पर उतरकर अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। कल्पना और इतिहास के सम्बन्ध को ये पात्र सहज रूप से जोड़ देते हैं। स्वर्णा अविजित के घर में आया का काम करती है। ब्रिटिश सरकार की स्वयंभूमिध्वंस नीति के परिणामस्वरूप उसे अपना घर–बार छोड़कर आना पड़ा। स्वर्णा एक ऐसी काल्पनिक पात्र है जिसने सन् 1943 में बंगाल के अकाल को अपनी आँखों से देखा है। उपन्यास में स्वर्णा महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक चरित्र भले ही न हो किन्तु लेखिका के बचपन में वह उसके घर में काम किया करती थी। "स्वर्णा को मैंने स्वयं जीवन में झेला है। वह हमारे घर पर काम किया करती थी (मेरे बचपन में) और शरच्चंद्र के उपन्यासों के सेवकों की तरह वफादार होते हुए भी उसकी प्रतिक्रियाएं तीखी, तल्ख और दो–टूक हुआ करती थीं। मौका आने पर जब उसे वफादारी और स्वतंत्र जीवन के बीच चुनना पड़ा, तो उसने स्वतंत्रता को ही चुना।"[16] स्वर्णा ने लेखिका के जीवन को प्रभावित किया है और यही कारण है कि उपन्यास

में भी स्वर्णा नामक पात्रा ऐसा प्रभाव छोड़ती है कि पाठक उससे अछूता नहीं रह पाता है। स्वर्णा को लेकर लेखिका ने एक घटना का वर्णन किया है जिसमें छाती में दर्द होने पर स्वर्णा को सरकारी अस्पताल में भर्ती कराया जाता है। वहाँ की गंदगी स्वर्णा से सहन नहीं होती और वह बिस्तर से उठकर अस्पताल की झाड़–पोंछ कर डालती है। यह घटना जहाँ राजनेताओं के बड़े–बड़े भाषणों की खिल्ली उड़ाती है वहीं स्वर्णा जैसी साधारण स्त्री के असाधारण चरित्र पर प्रकाश भी डालती है।

'अनित्य' के पात्रों के विषय में अपने विचारों को लेखिका ने उपन्यास की भूमिका में व्यक्त किया है, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये चरित्र ऐतिहासिक न होते हुए भी उनके प्रभाव से अछूते नहीं हैं तथा उनकी भूमिका की सार्थकता सभी प्रश्नचिह्नों से परे है। उनका कहना है कि – "वैसे यह उपन्यास भगतसिंह या अन्य किसी बड़े राजनीतिक नेता के जीवन को लेकर नहीं बुना गया। यह साधारण लोगों की कहानी है, पर उन लोगों पर राजनीतिक नेताओं का गहरा प्रभाव है। मैं मानती हूँ कि साधारण लोगों की भी इतिहास में उतनी ही हिस्सेदारी है, जितनी विशिष्ट व्यक्तियों या नेताओं की। हर जागरुक व्यक्ति के जीवन पर उसके समय की राजनीतिक और आर्थिक घटनाओं का भरपूर प्रभाव पड़ता है। .....ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई व्यक्ति ऐसे समय में जीवन बिताये जब व्यापक स्तर पर राजनीतिक उथल–पुथल मची हो, देश का पूरा नक्शा बदल रहा हो और वह उससे अछूता ही रह जाए।[17]

ये चरित्र इतिहास और आख्यान के मध्य सेतु का कार्य करते हैं और उपन्यास की कथा को गति प्रदान करते हैं। कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो अपने क्रिया–कलापों में ऐतिहासिक चरित्रों से काफी साम्य रखते हैं। ऐसा ही एक चरित्र

है – काजल बैनर्जी। वह भूमिगत दल के लिए काम करती है और क्रांतिकारी साधनों में उसका विश्वास है। अरुणा आसफ अली के चरित्र से उसकी भूमिका काफी मिलती–जुलती है।

वस्तुतः ये चरित्र उपन्यास में अपनी–अपनी भूमिका द्वारा न सिर्फ किसी न किसी ऐतिहासिक चरित्र का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, अपितु कटु वास्तविकताओं को भी प्रस्तुत करते हैं। पण्डित यज्ञदत्त शर्मा, जो आज़ादी की लड़ाई भी लड़ते हैं तथा माशूका रखने का शौक भी रखते हैं, जबकि गाँधी जी हमेशा ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाया करते थे। दूसरी ओर अविजित है जो गाँधी जी में विश्वास रखते हुए भी संगीता की निर्बलता का फायदा उठाता है। अपरिग्रही होने के स्थान पर वह धन और वैभव का अधिकाधिक संचय करने में विश्वास रखता है। ये घटनाएँ और इनसे जुड़े पात्र गाँधीवाद आदर्शों के खोखलेपन को दिखाते हैं और अंधश्रद्धा, अंधभक्ति, व्यक्तिपूजा, अंधानुकरण की धज्जियाँ भी उड़ा देते हैं।

उपन्यास में बहुत से ऐतिहासिक चरित्रों का उल्लेख भी हुआ है जैसे – महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल, गोपीमोहन साहा, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, विजयलक्ष्मी पण्डित आदि। लेकिन इन्हें उपन्यास के पात्र नहीं कहा जा सकता है। ये या तो मात्र घटना हैं या स्थितियाँ; जीवित चरित्र नहीं, जिनमें प्राण फूँककर लेखक उपन्यास का महल निर्मित करता है। इनके उल्लेख का महत्त्व इस बात में है कि ये उपन्यास के पात्रों की प्रामाणिकता को और बल प्रदान करते हैं।

मृदुला जी ने इस उपन्यास में विरोधाभासी नामों का प्रयोग किया है – अविजित तथा अनित्य। अविजित का अर्थ है, जिसे जीता न जा सके। जबकि वह

स्वयं अपनी दुर्बलताओं द्वारा विजित है। उसका चरित्र काजल, संगीता, अनित्य आदि चरित्रों के समक्ष संकुचित हो जाता है। श्यामा को अपने साँवले न होने का बोध है जबकि अविजित को अपने वास्तविक चरित्र का बोध उपन्यास के अन्त में होता है। यद्यपि प्रकट रूप में वह उसे स्वीकारता नहीं है किन्तु डिलीरियम की अवस्था में उसके प्रलाप से यह स्पष्ट हो जाता है।

ये सभी चरित्र एक–दूसरे के पूरक हैं। एक ही व्यक्ति के दो चरित्र। अनित्य वस्तुतः एक मिथक है जो अविजित के चरित्र का एक अंश है। इसी प्रकार प्रभा और शुभा, संगीता और श्यामा एक–दूसरे के पूरक चरित्र हैं। अनित्य कभी एक स्थान पर नहीं टिकता है, उसका स्वभाव ही यायावरी है। लेकिन मानसिक धरातल पर वह सदा अविजित के समीप उपस्थित रहता है। वह अविजित की अन्तरात्मा का पर्याय है, जिसका चरित्र आदर्श भले ही न हो किन्तु अंदर और बाहर से एक सा है। उसकी उपस्थिति ही क्षुब्ध और अपराधबोध से ग्रस्त अविजित की आत्मा को कचोटने के लिए काफी है। इसीलिए अंत में श्यामा न चाहते हुए भी अनित्य को अंतिम बार जाने के लिए कह देती है क्योंकि उसे मालूम है कि – "अनित्य रहा तो अविजित.... अनित्य के रहते अविजित कभी डिलीरियम से बाहर नहीं आ सकेगा।"[18]

उपर्युक्त विवेचन में हमने इतिहास–कथा तथा उपन्यास–कथा के गुम्फन और उसमें काल्पनिक पात्रों की भूमिका पर विचार किया। उपन्यास के कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं जो इतिहास में नहीं पाए जाते। ये तत्त्व हैं – संवाद तथा देशकाल का चित्रण। अन्य दो तत्त्व भाषा तथा उद्देश्य इतिहास में होते तो अवश्य हैं किन्तु उपन्यास से उनका स्वरूप भिन्न होता है। उपन्यास की भाषा कलात्मक होती है

तथा अपने भीतर संवेदनशक्ति का समावेश किए रहती है। भाषा संबंधी विशिष्टता की व्याख्या हम आगे जाकर करेंगे। शेष बचता है, उद्देश्य तत्त्व। इतिहास का उद्देश्य अतीत में घटी घटनाओं को तिथि और तथ्यों की सहायता से प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करना है। इसकी अभिव्यक्ति तो वह भी भाषा ही के माध्यम से करता है किन्तु उपन्यास अपने लेखक की जीवन–दृष्टि के कारण इतिहास से भिन्न अस्तित्व की प्रतीति कराता है। अन्यथा या तो वह ब्यौरा भर रह जायेगा या कोरा किस्सा। 'अनित्य' में जिस दृष्टि को व्यक्त किया गया है उसे भूमिका में साफ–साफ कह भी दिया है। उसका निर्माण तत्कालीन परिस्थितियों और उनमें ढल जाने के नकार से उत्पन्न हुआ है – "हमारे घर में आए दिन एक चर्चा चल निकलती थी। क्या ब्रिटिश राज से आज़ादी वाकई आज़ादी थी? या महज सत्ता हस्तांतरण? क्या अहिंसा का नाम जपकर सचमुच हिन्दुस्तानी लोग हिंसा का त्याग कर पाये थे? या वह परत–दर–परत भीतर जमती चली गई थी, ज्वालामुखी में सोये लावे की तरह, कभी भी फूट पड़ने के लिए? पाँच साल की उम्र से यह सब सुनते–सुनते हुआ यह कि, सामने रचा जा रहा इतिहास और उसका गैर–ईमानदार लिखित रूप, दोनों, मेरी अनुभूति के हिस्से बन गये, और अंततः चालीस की उम्र पर पहुँचकर 'अनित्य' लिखवा ले गये।"[19] मृदुला गर्ग न सिर्फ आज की आज़ादी के स्वरूप से असंतुष्ट है बल्कि इतिहास को अपनी आँखों से देखने–सुनने, महसूस करने और उसे रेशा–रेशा कर उचित–अनुचित के भान के फलस्वरूप ही उपन्यास 'अनित्य' के रूप में प्रस्तुत किया है।

नाटक में संवाद सबसे अनिवार्य तत्त्व है। उसके बिना साहित्य के इस रूप की नाटकीयता पर ही प्रश्नचिह्न लग जाता है। उपन्यास में लेखक जब–जब

कथासूत्र को कुछ हद तक पात्रों के हाथों में सौंप देता है, संवाद उपस्थित हो जाते हैं। संवाद न सिर्फ पात्रों की जीवंतता का आभास देते हैं अपितु उपन्यास की कथा को भी ऐसी सजीवता प्रदान कर देते हैं कि पाठक उसमें रम जाता है। 'अनित्य' में लेखिका ने संवादों की सहायता से पात्रों को अभिव्यक्ति का पूरा अवसर दिया है। मंजुल भगत ने 'अनित्य' के विषय में कहा है – "किसी भी उपन्यास में जो बात मुझे अत्यधिक छूती रही है वह है उसके चरित्रों में लेखनी द्वारा प्राण–प्रतिष्ठा, उनका गठन और संरचना। बावजूद उपन्यास की पृष्ठभूमि, घटनाचक्र, इतिहास व राजनीति के, इन चरित्रों का हर पृष्ठ व दृश्य में सजीव होते चले जाना और लेखक का उन्हें कठपुतली की तरह नचाये बिना, चलने–हँसने, बोलने–रोने देना, यही मेरे लिए मूल्यवान है। ....उपन्यास 'अनित्य' में बखूबी हुआ है। ....किसी भी अच्छे लेखक के चरित्र किसी हद तक उससे आज़ाद हो जाते हैं।"[20]

'अनित्य' के पात्रों के संवाद उनके चरित्रों के अनुरूप ही हैं, अथवा उनकी शैली चरित्रों को समझने में हमारी सहायता करती है। पृष्ठ–14 पर उपन्यास में अविजित और संगीता का संवाद है। यहाँ संगीता पहली बार उपन्यास के मंच पर आती है, लेकिन संवादों के माध्यम से अविजित के साथ उसके सम्बन्धों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यहाँ लेखिका के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं रहती है। संगीता शादी कर रही है और अविजित को निमंत्रण पत्र देने आती है –

"शादी कर क्यों रही हो उससे ?"

"मालदार है।"

"तुम्हें पैसे की क्या कमी है? डॉक्टरी खूब बढ़िया चल रही है।"

"आपको मेरे बारे में इतनी जानकारी कैसे हुई?"

"क्यों, इतनी नामी लेडी डाक्टर हो, जानकारी नहीं होगी?"

(अविजित ने 'लेडी डाक्टर' शब्द कुछ व्यंग्य के साथ कहा)

"लेडी डाक्टरों से आपका सरोकार? बच्चे गिरवाने का धंधा तो नहीं करने लगे?"

उपर्युक्त संवाद न सिर्फ उनके संबंधों को स्पष्ट करते हैं बल्कि वातावरण के तनाव को भी व्यक्त करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

'अनित्य' में लेखिका ने संवादों के माध्यम से उपन्यास को ऐतिहासिक रंग प्रदान किया है। इन्हीं संवादों के द्वारा पात्रों तथा घटनाओं को जीवंतता मिलती है–

"यह कैसे हो सकता है?" अविजित के मुँह से निकला।

"एक साल पहले ही तो पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य हमने धूम–धड़ाके के साथ अपनाया था और अब गोलमेज कांफ्रेंस के लिए लंदन जाना स्वाधीनता का पर्याय हो गया," चड्ढा ने कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता" अविजित ने कहा, "जरूर इसमें और धारा होगी... कुछ तो लिखा होगा कहीं.... पूरा पढ़ने दो मुझे।"

"कहीं कुछ नहीं है," हरीश ने भीतर घुसते हुए कहा था," मैंने पूरा पढ़ लिया है। गाँधी जी ने नमक बनाने की इजाजत के लिए देश को बेच दिया।"[21]

उपर्युक्त संवाद स्पष्ट करते हैं कि 'अनित्य' के पात्र ऐतिहासिक घटनाओं से अछूते नहीं हैं बल्कि राजनैतिक स्तर पर लिए गए निर्णयों से असहमत भी हैं। ये संवाद एक विशिष्ट ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत कर रहे हैं जो हैं – 5 मार्च 1931 को किया गया गाँधी–इर्विन समझौता। यही नहीं, आज़ाद की अल्फ्रेड नेशनल पार्क में हुई हत्या को याद करते हुए अविजित अतीत में पहुँच जाता है

तो वहाँ भी ब्यौरा नहीं अपितु संवाद ही घटना को सजीवता प्रदान करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

यद्यपि संवाद इतिहास के तत्त्व नहीं होते हैं लेकिन आख्यान और इतिहास का संयोग इनके माध्यम से साहित्य के रूप को और भी अधिक प्रभावपूर्ण बना देता है। 'अनित्य' में संवादों के माध्यम से लेखिका ने स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान आडम्बरपूर्ण आचरण पर भी प्रकाश डाला है। यह प्रयास उनके उद्देश्य की सिद्धि में सहायक ही हुआ है। पृष्ठ 87–88 पर उपन्यास में अविजित और अनित्य के मध्य संवाद है, जिसके माध्यम से उस समय पैदा की गई परिस्थितियों की अनित्य के माध्यम से खिल्ली उड़ाई गई है। उसका एक–एक कार्यकलाप कांग्रेसी नेताओं के विरोध के साधनों, जेल आदि जाने पर व्यंग्य करता है –

"गले में फूल मालाएं पहने, जुलूस में चलता अनित्य। अविजित भौंचक खड़ा रह गया था।

उसे देखकर अनित्य ने बड़ी अदा के साथ हाथ जोड़े थे।

अविजित झपटकर उसके पास पहुँच गया था।

"कहाँ से आ रहे हो? उसने पूछा था।"

"जेल से छूटकर। आपको पता नहीं गाँधी–इर्विन समझौता हो गया है और सत्याग्रही रिहा किए जा रहे हैं। खुद जवाहरलाल नेहरू लखनऊ तशरीफ लाये हुए हैं। हमें फूल मालाएं ही नहीं मिली, उनका दीदार भी हासिल हुआ।"

"पर तुम किसलिए गए थे जेल।"

"गाँधी जी की जय बोलने और किसलिए? गाँधी जी ने कहा, अंग्रेजों को

यहाँ से भगाओ, जेल जाओ, हम चले गए। गाँधी जी ने कहा, ***अंग्रेजों को अभी टिके रहने दो, आंदोलन बंद कर दो; हम बाहर आ गए।*** लोग खुश हुए, जुलूस निकले, सभाएँ हुई, फूल मालाएँ पहनाई गयी.... कांग्रेस अब अवैध नहीं रही...."

"चुप रहो", अविजित ने कहा, "हजारों लोग हैं जो अब भी जेलों में बंद हैं।

"जी हाँ" अनित्य गंभीर हो गया।" वे लोग अपने जमीर के कैदी हैं गाँधीजी के नहीं। मौत और काले पानी के सिवा उन्हें मिल भी क्या सकता है? ***सरकार और उनमें बीचबचाव करने वाला कौन है?***

"और तुम्हारा जमीर?"

"वह तो बचपन में ही मर गया था"

"तो अब गाँधीवाद कैसे बन गये?"

"मैं और गाँधीवादी ! तौबाह।"

"फिर जेल क्या करने गये थे?"

"सजा से बचने" अनित्य ने धीमा आवाज में कहा।"[22]

उपर्युक्त ***संवादों*** में गाँधीजी पर तीखा व्यंग्य है कि उन्होंने जब भी चाहा कह दिया और जनता को कठपुतली समझा, उनकी भावनाओं की कद्र नहीं की। अनित्य चूँकि मस्तमौला, बेपरवाह और फक्कड़ है इसीलिए निर्लिप्त होकर सही–सही विश्लेषण कर पा रहा है। साथ ही काले पानी की सजा भुगतने वाले क्रांतिकारियों की नियति तथा सरकार की बजाय उनके साथ गाँधी जी के असहयोग को कुछ ही वाक्यों में व्यक्त कर दिया है।

'अनित्य' के पात्र अपनी कथा, अपने तनाव खुद कहते और सहते हैं।

अतः कहीं–कहीं संवाद लम्बे हो गये हैं लेकिन उन्हें बोझिल नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि कुछ क्षण के लिए ये पाठक का हाथ पकड़कर सारी स्थिति को समझाने का पूरा–पूरा प्रयत्न करते हैं। इन संवादों में कथा के अनुरूप कहीं सौहार्द है, कहीं बहुत अधिक गहराई, कहीं बौद्धिकता व दार्शनिकता है तो कहीं हास्य का पुट है। वातावरण के तनाव को व्यक्त करने में भी ये संवाद बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं।

'अनित्य' के संवादों में कहीं–कहीं बहुत गति है। ऐसे संवाद आकार में छोटे हैं –

"हमें आज ही दिल्ली छोड़ देनी है" – कैलाश ने कहा।

"आज ही ?"

कैलाश धीमे से हँस दिया। बोला "शादी करके लड़का–लड़की अमूमन शहर छोड़कर भागा करते हैं।"

"यानी लोगों को दिखलाने भर को भागना है, जाना कहीं नहीं है।"

"जाना है। पहले कलकत्ता फिर गाँव।"

"कौन से गाँव ?"

"नाम का महत्त्व नहीं है"

"बिमल दत्त...."

"वहीं है।"

"काजल दी ?"

वे भी

"हमारे साथ और कौन जायेगा ?"

"अनिल पहले ही जा चुका।"

"लड़ाई शुरू हो गई।"

"होने वाली है।"[23]

'अनित्य' में संवाद दो पात्रों के मध्य ही नहीं अपितु आत्मसंवाद भी हैं। अविजित तो पूरे उपन्यास में आरम्भ से अंत तक स्वयं से बातें करता रहता है। इसके अलावा अनेक स्थानों पर संवादों को तीन बिन्दुओं के बाद अधूरा छोड़ दिया गया है। मोहन राकेश के नाटक 'आधे–अधूरे' में इस शैली का प्रयोग किया गया है। यह शैली न सिर्फ वाक्यों के उतार–चढ़ाव और लेखिका की अभिव्यक्ति को पाठक तक सम्प्रेषित करने में सहयोग देती है बल्कि अधूरे वाक्य और भी प्रभावी सिद्ध होते हैं। पाठक अपनी बुद्धिमता से स्वयं ही अनुमान लगा लेता है कि पात्र क्या कहना चाहते हैं। उदाहरण के लिए पृष्ठ-254 पर एक वाक्य है जो अधूरा होते हुए भी बहुत कुछ व्यक्त कर जाता है ———

"भूख आँतों में नहीं लगती आदमी के . . ."।

कुल मिलाकर 'अनित्य' के संवादों में ताजगी है, पैनी बुद्धि का प्रदर्शन है और हाजिरजवाबी का एक नमूना है। स्वर्णा के द्वारा बोले गए संवादों में अलग बानगी है और काजल या अनित्य के ऊँचे राजनीतिक स्तर के संवादों की अलग बानगी है।

'अनित्य' में सन् 1932 से 1942 की जिन ऐतिहासिक घटनाओं को उपन्यास का आधार बनाया गया है उसकी उपस्थिति के लिए लेखिका ने ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि की है। इसके लिए उन्होंने कहीं तिथियों का सहारा लिया है तो कहीं पात्रों के वार्तालाप का – जिसकी चर्चा संवादों के अन्तर्गत की जा चुकी है। विदेशी

कपड़ों की होली जलाने संबंधी प्रसंग, अविजित पर हुआ लाठीचार्ज और उस पर उसकी प्रतिक्रिया आदि ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करते हैं। पृष्ठ 130 पर गाँधीजी द्वारा सन् 1934 में सत्याग्रह आंदोलन वापस ले लिए जाने पर अविजित और उसके साथियों को झटका लगता है। जनसाधारण पर उसकी प्रतिक्रिया वातावरण को और सजीव कर देती है।

साहित्य के लिखित रूपों में भाषा शरीर की भाँति है जिसका आधार लिए बिना उसे सजीवता प्रदान नहीं की जा सकती है क्योंकि शरीर के बिना आत्मा अमूर्त्त ही होती है। 'अनित्य' में इतिहास को सजीव बनाने के लिए भाषा को माध्यम बनाया गया है। इस उपन्यास की भाषा कथा सूत्रों को जोड़ने, पात्रों को अभिव्यक्ति देने तथा उनकी चारित्रिक विशेषताओं को व्यक्त करने, संवादों के उतार–चढ़ाव में सहयोग देने, ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करने तथा लेखिका के उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक सिद्ध हुई है।

'अनित्य' की भाषा अपने में पूर्ण सक्षम है। जहाँ भी जरूरत हुई है, लेखिका ने प्रतीकों का सहारा लिया है। अविजित का दिमाग रह–रहकर अतीत की ओर लौटता है और उसकी मनःस्थिति को प्रतीकात्मक रूप में उजागर करने के लिए 'दस कदम आगे..... दस कदम पीछे....." जैसे प्रतीकों का उपयोग किया गया है। दूसरे खण्ड में वही प्रतीक इस्तेमाल किए गए हैं जिनका अंतरंग सम्बन्ध गति अथवा समय से हो; जैसे लाल बत्ती का प्रतीक, सुधांशु द्वारा कागज की नाव बनाने की प्रतीकात्मक प्रक्रिया और कागज कतरने का प्रतीक। यहाँ तक कि उसका बेटा सुधांशु भी विक्षिप्त भविष्य का प्रतीक है जिसकी अभिव्यक्ति तक अस्पष्ट है।

'अनित्य' की भाषा सीधी–सपाट नहीं अपितु चित्रात्मक है। लेखिका अपनी

कलम के जादू से ऐसे भाषा–चित्र खींच देती है कि पाठक के सामने सारा दृश्य साकार हो उठता है। भाषा को और भी अधिक प्रभावी बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है –

"सिर भट्टी सा सुलग रहा है जैसे रेगिस्तान में मीलों लम्बा सफर तय करके लौटा हो. . . हाँ लम्बा तो था ही सफर. . . मीलों नहीं बरसों लम्बा। सफर मीलों में हो तो बदन टूटता है, दिमाग नहीं फटता. . . पर वक्त के रेगिस्तान पर यह अंतहीन सफर एक दिशा से दूसरी दिशा में, हमेशा तपते सूरज के नीचे. . . एक चक्कर पूरा हुआ नहीं कि दूसरा शुरू. . ."[24]

रेगिस्तान में पानी का नामोनिशान नहीं होता है, अविजित को भी जीवन में कहीं सुकून नहीं मिला। वह तरलता व स्नेह की तलाश में भटकता ही रहा। उसकी यातना मानसिक रही है न कि शारीरिक। मानसिक स्थिति को दिखाने के लिए भाषा का उपर्युक्त रूप निस्संदेह प्रशंसनीय है। अपनी बात को और भी अधिक प्रभावी ढंग से कहने के लिए कुछ पूर्व–प्रचलित वाक्यों को प्रयुक्त किया गया है। ये वर्तमान जीवन की विडम्बना के लिए वाक्यों की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास में एक स्थान पर अनित्य का कथन है –

"हमारे यहाँ व्यक्ति पहले आता है, फिर संगठन और सबसे बाद में सिद्धान्त। बुद्ध के ज़माने से यही पद्धति चली आ रही है। बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि का मंत्र यही सिखलाता है; पहले व्यक्ति, फिर संगठन और सबसे बाद में सिद्धान्त।"[25]

यह वाक्य लाक्षणिक है जो संकेत करता है उस विडम्बना की ओर जो स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान वर्तमान थी। लोगों ने गाँधी को महात्मा कहकर जो

उनका अनुसरण किया तो मानो उनको पूर्ण समर्पित कर दिया। हालाँकि सिद्धान्तों की स्वयं उन्हीं के द्वारा धज्जियाँ उड़ाई गई और समयानुसार एक नई परिभाषा गढ़ ली गई। कुल मिलाकर ऐसा हर वाक्य अपने भीतर बहुत सी कथाएँ, वास्तविकताएँ और विडम्बनापूर्ण तथ्य छिपाये हुए है।

इतिहास और उपन्यास की भाषा में बहुत अंतर होता है। इतिहास की भाषा तथ्य की ओर ज्यादा संकेत करती है परन्तु उपन्यास की भाषा कल्पना और संवेदना से जुड़ी हुई होती है। उसका काम ही है – भावनाओं को जगाना तथा उद्दीपित करना। जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है इस काम में 'अनित्य' की भाषा पूर्ण सक्षम है। यहाँ तक कि कहीं–कहीं लेखिका स्वयं हस्तक्षेप करके उस समय के राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम का वर्णन करती है तो तथ्य और कला का विचित्र संगम देखने को मिलता है। भाषा की ऐसी ही कलात्मक प्रस्तुति का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

"....शांति किस कीमत पर ? उनके लिए जवाब एकदम साफ है ....औरों की कीमत पर। अपना सिर न झुके, औरों का चाहे कट जाये। ....जब गाँधी कहता है, हिटलर का सामना अहिंसा से करो, युद्ध का मार्ग मत अपनाओ तो पूरा संसार उसे विक्षिप्त कहता है, और नपुंसक.... पर जब ब्रिटेन और फ्रांस ने चेकोस्लोवाकिया से कहा – यूरोप की शांति की खातिर तुम हिटलर के जबड़ों की भेंट हो जाओ तो किसने उन्हें विक्षिप्त कहा..... कौन कह सकता है..... इतिहास के सिवा, और इतिहास वे लिखते हैं जिनके हाथों में सत्ता होती, ताकत होती है...."[26]

'अनित्य' में कहीं–कहीं उस समय के दस्तावेजों का ज्यों का त्यों प्रयोग किया गया है जैसे – चर्चिल का दिया गया भाषण, गाँधीजी द्वारा आंदोलन स्थगित

करने के पश्चात् दिया गया स्पष्टीकरण और सबसे ज्यादा भगतसिंह द्वारा अपने दल के स्वरूप और उद्देश्यों के बारे में दिए गए वक्तव्य। ये दस्तावेज पूरी तरह प्रामाणिक हैं, लेकिन तथ्यों के इस ब्यौरे ने उपन्यास की भाषा को प्रभावित किया है। यही कारण है कि हम पहले और दूसरे खण्ड में कला व शिल्प के स्तर पर अंतर देखते हैं। ये दस्तावेज कथा के अंग तो हैं ही, लेकिन उसकी गति को कुछ क्षण के लिए बाधित करते हैं। जबकि 'प्रतिबोध' खण्ड में कथा और भाषा का प्रवाह सहज ही देखा जा सकता है।

मृदुला जी के लेखन–कला की विशिष्टता ही कही जाएगी कि ऐसे स्थान उपन्यास में पैबन्द की तरह नहीं दिखते। लेखिका ने बड़ी कुशलता से बंगाल के अकाल को स्वर्णा के माध्यम से उल्लिखित कर दिया है तो भगतसिंह के विचारों को काजल बैनर्जी की सहायता से। पात्र इनका स्मरण करते हैं, आज की परिस्थितियों की विडम्बना को देखते हैं और दोनों की तुलना करते हैं। यह विडम्बना दिखाना ही उपन्यास का मूल कथ्य है, जिसमें उपन्यास की भाषा सहायक ही सिद्ध हुई है।

सन्दर्भ सूची

1.	अनित्य : मृदुला गर्ग	पृष्ठ-169
2.	कथादेश मई 99, मैं और मेरा समय – मृदुला गर्ग	पृष्ठ-11
3.	अनित्य – मृदुला गर्ग	पृष्ठ-4
4.	वही	पृष्ठ-71
5.	वही	पृष्ठ-78
6.	वही	पृष्ठ-26
7.	वही	पृष्ठ-25
8.	वही	पृष्ठ-13
9.	कथादेश, मई 99	पृष्ठ-11
10.	अनित्य : मृदुला गर्ग	पृष्ठ-253
11.	कथादेश, मई 99	पृष्ठ-11
12.	अनित्य : मृदुला गर्ग	पृष्ठ-49
13.	वही	भूमिका
14.	वही	पृष्ठ-71
15.	कलिकथा वाया बाइपास : अलका सरावगी	पृष्ठ-27
16.	अनित्य : मृदुला गर्ग	भूमिका
17.	वही	भूमिका
18.	वही	पृष्ठ-18

19. कथादेश, मई 99 पृष्ठ-8

20. मृदुला गर्ग के नाम मंजुल भगत के पत्र में से उद्धृत

21. अनित्य : मृदुला गर्ग पृष्ठ-21

22. वही पृष्ठ-87-88

23. वही पृष्ठ-243

24. वही पृष्ठ-102

25. वही पृष्ठ-75

26. वही पृष्ठ-52

और अंत में . . .

और अंत में . . .

और अंत में जबकि चारों अध्याय पूर्ण रूप में विश्लेषण सहित आपके सामने हैं, औपचारिकतावश ही सही कुछ कहना अभी भी शेष है। आज से दो वर्ष पहले तक़ किताबों से परिचय भर था, मित्रता नहीं हुई थी। धीरे–धीरे परिचय घनिष्ठता में बदला। हम दोनों बहुत अच्छे मित्र बन गए, रात–दिन के साथ और चाय की चुस्कियों के बीच विचारों के आदान–प्रदान ने हमारे सम्बन्धों में इतनी अंतरंगता ला दी कि हमारा एक–दूसरे के बिना रहना–जीना दूभर हो गया।

न सिर्फ 'अनित्य' बल्कि मृदुला जी के सभी उपन्यासों से धीरे–धीरे परिचित हुई। पढ़ा, समझा, अपनी संवेदनशक्ति के द्वारा उनकी पीड़ा को भोगा, आलोचक की भाँति उनका विश्लेषण किया और न सिर्फ शोध के सन्दर्भ में उसका प्रयोग किया बल्कि अपने अनुभव संसार को भी समृद्ध किया।

तस्लीमा नसरीन मेरी प्रिय लेखिका हैं। 'औरत के हक में' से लेकर 'मेरे बचपन के दिन' तक जो भी पढ़ा, उनकी बेबाकी से प्रभावित हुई। सच बोलने का सामर्थ्य बहुत ही कम लोगों में होता है। इधर हिन्दी साहित्य–जगत् में जब मृदुला जी के साहित्य, विशेष तौर पर उपन्यासों से रू–ब–रू हुई तो पाया कि तस्लीमा की बेबाकी यहाँ पर अपनी पूरी कलात्मकता, संवेदनशक्ति और विचारात्मकता से संपृक्त है। उनसे मिलना, बातचीत करना, उनके लेखन से सम्बन्धित शंकाओं को सामने रखना, विवादों के विषय में उनके स्वयं के विचारों को जानना सभी कुछ बहुत अच्छा अनुभव रहा। न सिर्फ उनका लेखन अपितु मुलाकात ने उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व को जानने–समझने में योग दिया।

'अनित्य' को ही लें। उनके सभी उपन्यासों से नितान्त भिन्न यह उपन्यास कुछ अलग तरह के सवाल उठाता है। ये वही सवाल हैं जिन्हें हम वर्षों से राज के भय के कारण अथवा यथास्थितिवादी नीति के वशीभूत होकर नज़रअंदाज करते चले आ रहे थे। यह उपन्यास हमें सोते से झिंझोड़कर उठाता है। मौकापरस्ती, समझौतावाद, गरीबी, भुखमरी, पूंजीवाद, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आदि अव्यवस्थाओं से असंतुष्ट लोगों के सामने सच की तस्वीर पेश करता है।

यह सच है कि 'अनित्य' लिखते समय लेखिका की सहानुभूति भगतसिंह के साथ रही है, लेकिन अपनी बात कहने के लिए उन्होंने कोरी संवेदनाओं का दामन नहीं थामा है अपितु तथ्यों को तर्कों के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। आज़ादी के लड़ाई के प्रयत्नों के सम्बन्ध में लिखा गया इतिहास तस्वीर का मात्र एक ही पहलू दिखाता रहा, मृदुला जी तस्वीर का दूसरा पहलू पेश करती हैं।

'अनित्य' को लेकर आलोचना–जगत् में कुछ विवाद हैं। आलोचकों का मानना है कि 'अनित्य' कहीं से भी ऐतिहासिक सिद्ध नहीं होता। यह सच है कि परम्परागत रूप से यह ऐतिहासिक नहीं है किन्तु हर रूप जो परम्परा से थोड़ा हटकर होता है, अपने लिए भिन्न कसौटी और नए नियमों की अपेक्षा अवश्य रखता है, अन्यथा परम्पराओं की जकड़न पोखर के पानी की भाँति सड़ाँध पैदा कर देती है। अपने लघु शोध–प्रबन्ध में मैंने कहीं भी यह विवाद नहीं उठाया है कि 'अनित्य' को उपन्यासों की किस श्रेणी में रखा जाए, लेकिन साथ ही इसमें इतिहास के प्रयोग को भी अनदेखा नहीं किया है। इस उपन्यास का तो कथ्य ही इतिहास के उल्लेख के बिना अधूरा रह जाएगा। यद्यपि इस उपन्यास में इतिहास की घटनाएँ नाटक की भाँति हमारे सामने घटित नहीं होती हैं लेकिन फिर भी इतिहास फ्लैशबैक

में प्रस्तुत किया गया है। इन घटनाओं को या तो 'अनित्य' के पात्र याद करते हैं अथवा किन्हीं दो पात्रों की बातचीत से हम इनसे परिचय प्राप्त करते हैं। इतना सब होने पर भी तथ्य और तिथियों के प्रति लेखिका जितनी सजग रही हैं उससे उनकी इतिहास–चेतना का पता चलता है।

'अनित्य' कुछ समस्याओं को उठाता है, जिनमें से एक है इतिहास के पुनर्लेखन की समस्या। कोई भी सत्ता या राज जब किसी देश पर अधिकार जमाता है तो सर्वप्रथम उसकी संस्कृति पर धावा बोलता है। अंग्रेजों ने हमारे इतिहास को मनचाहे रूप में लिखा। आज़ादी के बाद कांग्रेस–राज ने अपने यशोगान से इतिहास की पुस्तकों को भर दिया। जनता किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी सब कुछ देखती रही। आज बी.जे.पी. के राज में भी ऐसी कई घटनाएं सामने आई। इतिहासकार का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है सत्य को प्रस्तुत करना, और यह सत्य सत्ता–पक्ष के हस्तक्षेप से मुक्त होकर ही सामने आ सकता है। इमरजेन्सी ने व्यक्ति–स्वतंत्रता को छीन लिया, अभिव्यक्ति पर रोक लगा दी गई। 'अनित्य' की काजल भी इसी पीड़ा को व्यक्त करती है और लेखिका इस उपन्यास को लिखने के उद्देश्य को भी बातों ही बातों में प्रस्तुत कर देती है।

'अनित्य' स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधीजी की भूमिका पर भी प्रश्नचिह्न लगाता है। गाँधीजी के अहिंसा तथा सदाचार नामक अस्त्र क्या वाकई में कारगर हो पाए ! यदि ऐसा होता तो भारत–विभाजन के समय हिंसा का जो नंगा नाच हुआ, क्या वह उसी घृणा की परिणति नहीं था जो लोगों के दिलों में दबी–छुपी रह गई थी। असहयोग, सविनय अवज्ञा, गाँधी–इर्विन समझौता तथा इस शोध–प्रबन्ध में उल्लिखित कई घटनाएँ गाँधी को कटघरे में खड़ा कर देती हैं। आज़ादी की

लड़ाई में 'पूर्ण स्वतंत्रता' को सदाचार के बाद रखने की नीति से गाँधीवादियों के कार्यक्रम की न्यूनता प्रकट होती है। लेखिका का कहना सही है कि मात्र हिंसक गतिविधियों द्वारा आज़ादी पाने की तमन्ना के कारण ही क्रान्तिकारी मार्ग पर आरोप नहीं लगाया जा सकता है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए वह भगतसिंह के वक्तव्यों और हिंसप्रस के मसौदे को काजल और अविजित नामक पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं।

आज़ादी की लड़ाई से जुड़े कुछ अन्य पहलू भी हैं जैसे क्रांतिकारियों को जेल में प्रताड़ित किया जाना, काले–पानी की सज़ा देना, देशभक्ति में आस्था रखने पर भी स्वयं गाँधीजी की उनके प्रति उपेक्षा, आज़ादी के बाद क्रांतिकारियों की उपेक्षा तथा कांग्रेसियों का सत्ता में आना, बिना किसी बड़े परिवर्तन के सत्ता का हस्तांतरण, अविजित जैसे चेतनासम्पन्न लोगों का अपराधबोध, उनकी पीढ़ी का विकलांग होना और अंततः अपराधबोध के परिणामस्वरूप हुई मानसिक विकृति की अवस्था। न सिर्फ ऐतिहासिक स्तर पर बल्कि काल्पनिक कथा के स्तर पर भी यह उपन्यास त्रासद सिद्ध होता है। इसकी परिणति अत्यन्त मार्मिक है।

एक अन्य प्रश्न जो अक्सर उठाया जाता रहा है – प्रभा का नक्सलवादी गतिविधियों में शरीक होना। प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है क्योंकि स्वतंत्र भारत में इस प्रकार की गतिविधियाँ देश की अखण्डता के लिए खतरा पैदा करती हैं। उपन्यास में लेखिका ने दिखाया है कि प्रभा का धाकड़ और विद्रोही स्वभाव जब काजल बैनर्जी की शागिर्दी में आता है तो कहानी एक नया मोड़ ले लेती है। संगठन को धन की आवश्यकता है अतः वे हत्या और लूटपाट का सहारा लेते हैं। एक पात्र के मुँह से कहलवाया गया है – 'आज़ादी की एक और लड़ाई हमें लड़नी होगी।'

आज़ादी की दूसरी लड़ाई जिसमें हमें भ्रष्टाचार, पूंजीवाद और पुरानी एवं सड़ी–गली व्यवस्था से छुटकारा पाना है, का स्वरूप उसी लड़ाई की भाँति होगा जो हमारे क्रांतिकारियों ने सन् 1947 के दौरान लड़ी थी। उन क्रांतिकारियों के पास एक रचनात्मक कार्यक्रम था, देश को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करा के नयी शासन व्यवस्था स्थापित करना। लेकिन आज जब हम नौजवानों को विदेशी राज के प्रभाव में आकर, साम्प्रदायिक प्रभावों के चंगुल में फँसकर गुमराह होते हुए देखते हैं तो दुःख होता है कि हमारी युवा पीढ़ी अनजाने में ही देश को टूटने के कगार पर ले जा रही है। यद्यपि इसके लिए हमारी नौकरशाही और राजव्यवस्था भी बहुत हद तक जिम्मेदार है। इससे इतर आज़ाद भारत के नागरिकों को अनेकों अधिकार मिले हैं जिनसे वे अपनी प्रतिभा का सदुपयोग कर सकते हैं। अवसरों के अनेक मौके हैं अतः प्रभा इस उपन्यास में जो मार्ग चुनती है उससे सहमत होना सहज नहीं है।

ऐतिहासिकता की बहस के बावजूद 'अनित्य' आख्यान और इतिहास के सम्बन्ध का एक नवीन रूप प्रस्तुत करता है। कथा और इतिहास ने मिलकर जिस 'अनित्य' की सृष्टि की वह आज का यथार्थ तथा नित्य है। दोनों ही स्तरों पर उपन्यास प्रभावी बन पड़ा है।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका* – मैनेजर पाण्डेय
   हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
   प्रथम संस्करण 1989.

2. *The Varieties of History*, editor Fritz Stern
   Macmillan Publication, New Delhi
   Edition 1963.

3. *इतिहास दर्शन* – डॉ॰ बुद्ध प्रकाश
   हिन्दी समिति, लखनऊ
   संस्करण 1962 ई॰

4. *प्रेमचन्द का अप्राप्य साहित्य* – डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका (खण्ड–2)
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
   प्रथम संस्करण 1988.

5. *अनुसंधान की प्रक्रिया* – सावित्री सिन्हा
   नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
   संस्करण 1969

6. *साहित्य सहचर* – हजारी प्रसाद द्विवेदी
   लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
   संस्करण 1982.

7. *हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ* – डॉ॰ शशिभूषण सिंहल
   विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
   प्रथम संस्करण 1970.

8. *हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा* – डॉ॰ रामदरश मिश्र
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पटना
द्वितीय संस्करण 1995.

9. *भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज* – चमनलाल जगमोहन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पटना
संस्करण 1997.

10. *जवाहरलाल नेहरू : बेनकाब* – हंसराज रहबर
हंसराज रहबर प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 1969

11. *यातना शिविर में* – हिमांशु जोशी
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
संस्करण 1998

12. *भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज* – सं॰ वीरेन्द्र सिन्धु
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
द्वितीय संस्करण 1979

13. *आधुनिक भारत* – सुमित सरकार
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पटना
संस्करण 1996.

14. *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष* – बिपिनचन्द्र
हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
षष्ठम संस्करण 1993.

15. *आधुनिक भारत का इतिहास* – यशपाल एण्ड ग्रोवर
एकचन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली
संस्करण 1996.

16. *आधुनिक काल का इतिहास* – सी.डी.एम. केटलबी
एकचन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली
संस्करण 1978.

17. *भारतीय मुक्ति संघर्ष : कुछ कड़वी सच्चाइयाँ* (सुनीतिकुमार घोष की पुस्तक 'इण्डिया एण्ड द राज' का संक्षिप्त हिन्दी रूपांतरण)
नौजवान दस्ता प्रकाशन, रोहतक (हरियाणा)
द्वितीय संस्करण 1998.

18. *कलिकथा वाया बाइपास* – अलका सरावगी
आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)
द्वितीय संस्करण 1999

19. *उसके हिस्से की धूप* – मृदुला गर्ग
राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली
संस्करण 1996

20. *वंशज* – मृदुला गर्ग
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण 1976

21. *चित्तकोबरा* – मृदुला गर्ग
मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
चतुर्थ संस्करण 1994.

22. *अनित्य* – मृदुला गर्ग

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

चतुर्थ संस्करण, 1998

23. *मैं और मैं* – मृदुला गर्ग

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण 1984

24. *कठगुलाब* – मृदुला गर्ग

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

द्वितीय संस्करण 1998

पत्र-पत्रिकाएं

1. अक्षरा, अक्तूबर 1991 से मार्च 1992
2. आलोचना, अक्तूबर 1954
3. कथादेश, मई 1999
4. वैचारिकी संकलन, मई 1996.
5. वैचारिकी संकलन, जुलाई 1997
6. वैचारिकी संकलन, अप्रैल 1998
7. हंस, जनवरी 1999.
8. मृदुला गर्ग के नाम मंजुल भगत का पत्र
9. मृदुला गर्ग के नाम मन्मथनाथ गुप्त का पत्र